THE BOOK WAS DRENCHED

UNIVERSAL
LIBRARY
OU_180392
UNIVERSAL
LIBRARY

बुर्दा फरोश

हमारे अन्य प्रकाशन

विजय किस की
आँचल और आँसू
उसकी कहानी
प्रेम पुजारिन
कौन किसी का
चाँद सितारे
आग
आँसू
राज कुमारी की प्रेम कहानी
समाज का अत्याचार
पति पत्नी प्रेम
शाही लकड़हारा
शाही डाकू
शाही भिकारी
स्त्रियों का राज्य
आदर्श सन्तान पालन

सहगल प्रकाशन नं०—१०

बुदो फरोश

जमनादास 'अख्तर'

प्रकाशक

नारायणदत्त सहगल एण्ड सन्ज

चौक फतहपुरी, देहली ६

प्रकाशकः—
बलराज सहगल
प्रो०: नारायणदत्त सहगल एण्ड सन्ज़
चौक फतहपुरी, देहली ६

CHECKED 1958

Checked 1963

ecked 1969

(प्रकाशक द्वारा सर्वाधिकार सुरक्षित)

[स्वतन्त्र भारत में———प्रथम संस्करण]

मूल्य—दो रुपया चार आना

मुद्रकः—
जनरल प्रिंटिंग कम्पनी
दरिया गंज देहली

भेंट

श्रीमती रामेश्वरी नेहरु के कर-कमलों में !
जो दुखी देवियों को
बुर्दा फ़रोशों के चुंगल से
मुक्त कराने के लिये
आन्दोलन कर रही हैं।

जमना दास 'अख्तर'

प्रस्तावना

यह उन दिनों की बात है जब देश का बटवारा रोकने के लिये महात्मा गांधी मि० जिन्ना से वार्तालाप करने के लिये बम्बई पहुँचे थे। मैं एक पत्रकार की हैसियत से रिपोर्टिंग के लिये गया था और वहीं के एक बड़े होटल में ठहरा था। युद्ध के कारण स्थान की बहुत कमी थी और बड़ी कठिनाई के बाद जो जगह मिली, वह था तो एक होटल परन्तु भ्रष्टाचार का एक बहुत बड़ा गढ़ था। दिन रात के चौबीस घण्टों में प्रत्येक जाति और दर्जे के लोग आते और विलासता का प्रदर्शन कर के चले जाते। मुझे इस वायुमण्डल से बहुत घृणा थी परन्तु विवश था, कोई दूसरी जगह भी तो नहीं मिलती थी।

हैदराबाद के एक व्यापारी सज्जन जो जालंधर के रहने वाले थे, साथ वाले कमरे में रहते थे। जब देखो शराब के नशे में मद-मस्त। कभी किसी पारसी लड़की को लिये हुए तो कभी किसी हिन्दू बालिका को। एक दिन एक रैस्टोरैन्ट में एक पारसी लड़की को देखा। चेहरे से तो किसी बड़े घर की बालिका मालूम होती थी परन्तु दूसरे दिन वह व्यापारी महाशय उसे लिये हुए शराब पी रहे थे। मुझे देख कर कहने लगे—"आओ आज तुम भी

शपथ तोड़ दो।" मैं उन्हें समझाने लगा, पारसी लड़की को भी उपदेश देने लगा। कई कड़वी बातें कह गया परन्तु वह क्रुद्ध नहीं हुई। उसने उत्तर नहीं दिया, सुनती रही। इतने में एक बड़े से कद का आदमी आया, नशे में झूमता हुआ। उसका नाम था नानक चन्द। बम्बई के बहुत से लोग उसे जानते होंगे। उसने मेरी बातें सुनीं तो अपने "कारनामों" (Exploits) का विवरण शुरू कर दिया। मैंने सुना तो काँप उठा कि संसार में इतने निर्दयी और पिशाचात्मा भी हो सकते हैं। घबरा कर उठ गया वहाँ से।

१६४० के अन्त में मुझे एक आवश्यक काम से लाहौर जाना पड़ा। लाहौर हिंदुओं के लिये मृत्यु नगर बना हुआ था। मैं एक मुसलमान मित्र के साथ एक होटल में चाय पी रहा था कि एक जानी पहचानी शक्ल देखी। वह था वही बम्बई का नानक चन्द! मुझे देख कर वह वहाँ से उठ गया। जब मैं बाहर निकला तो वह मेरे समीप आ गया। पूछने लगा—"मुझे पहचानते हो क्या?"

मैंने घृणा से कहा—"तुम्हें कौन नहीं पहचानता। यहाँ भी कोई खेल रचा रहे होगे तुम!"

उसकी आँखों में आँसू आ गये। इधर-उधर की बातों के बाद वह मुझे ले गया होटल के एक कमरे में। उसने अपनी कहानी का दूसरा भाग सुनाया और कहने लगा—"मैं तो प्रायश्चित कर रहा हूँ। कौशल्या को ढूंढने के लिये यहां आया था, नहीं मिली। अब वापस गुजरात जा रहा हूँ।"

यह पुस्तक नानक की आपबीती कहानी है। सुन कर लिखने का विचार हुआ था परन्तु अवकाश नहीं मिला। इधर जब मैंने

दिल्ली में एक घटना के परिणामअनुसार बुर्दा फ़रोशों और भ्रष्टाचार के अड्डों से लड़कियों को निकालना शुरू किया और उन लड़कियों से उनकी राम कहानियां सुनीं तो मुझे वह कहानी याद आ गई जो नानक ने एक बार सुनाई थी। उन दानों में बहुत समानता थी। नानक ने जिस प्रकार लड़कियों का अपहरण करने और उन्हें भेड़ बकरियों की तरह बेच देने के अपने हथकन्डे बताये थे वह सत्य ही तो थे। समझ में आ गया कि हमारे देश में प्रतिवर्ष लाखों निर्दोष और अनपढ़ लड़कियों के जीवन किस प्रकार नष्ट होते हैं। और इस विनाश में बुर्दा फ़रोशों के साथ ही किन २ का हाथ है।

यह पुस्तक उपन्यास के रूप में 'तेज' में प्रकाशित हुई तो जिन्हों ने पढ़ा वह काँप उठे। उनके आग्रह पर इसे उर्दू में पुस्तक का रूप दिया और अब हिन्दी में उसी का अनुवाद प्रकाशित किया जा रहा है। इस पुस्तक का केवल एक ही अभिप्राय है और वह यह कि साधारण जनता पढ़े और उसे मालूम हो कि क्या २ अन्धेर हो रहे हैं। मैं समझता हूँ कि जो बालिका इसे पढ़ेगी वह कभी किसी पुरुष के धोखे में नहीं आयेगी और यदि इस से एक भी जीवन नष्ट होने से बच जाये तो मेरा परिश्रम सफ़ल हो गया।

मेरी दूसरी पुस्तकों की तरह इसकी आमदनी भी साम्प्रदायिकता तथा भ्रष्टाचार विरोधी बोर्ड दिल्ली के लिये है। इस बोर्ड ने दर्जनों लड़कियों को बुर्दा फ़रोशों के चुंगल से छुड़ाया और उन्हें पुनर्जीवन का दान दिया। परमात्मा उसे और भी सफल करे।

भवदीय

जमना दास 'अख्तर'

: एक :

करीम और सरदाराँ

बुर्दा फ़रोशी मेरा खान्दानी काम नहीं, न ही बचपन में मुझे इस के विषय में कुछ मालूम था। आज पन्द्रह वर्ष के अनुभव के बाद मैं इस योग्य हूँ कि किसी भी व्यक्ति की शक्ल देख कर बता सकता हूँ कि वह किस प्रकार का मनुष्य है। सज्जनता के पर्दे में जो गुंडागर्दी करते हैं मैं उनकी रग-रग से परिचित हूँ।

पन्द्रह वर्ष का अनुभव कोई मामूली अनुभव नहीं होता। फिर मैंने तो देश-देश का पानी पीया है, जगह-जगह घूमा हूँ। यदि मैं यह कहूँ कि मुझे इस बीच में कुछ थोड़े से ही सज्जन व्यक्ति मिले हैं, तो इसमें कोई अत्युक्ति न होगी।

मैं रावलपिन्डी के समीप सैयदपुर के छोटे से गाँव में पैदा हुआ था। मेरा नाम नानक चन्द है। मैंने प्रारम्भिक शिक्षा सनातन धर्म हाई स्कूल रावलपिन्डी में प्राप्त की थी।

आज जब कभी एकान्त समय में सोचता हूँ और अपने बचपन की याद आती है तो मैं इस नतीजे पर पहुँचता हूँ कि यदि मेरी मां मुझे बचपन में ही अकेला छोड़ कर स्वर्ग न सिधार जाती और मेरा बाप अपनी साली से विवाह न कर

लेता, तो मैं हरगिज़ अपमानित और कलंकित रास्ते पर कदम न रखता। आज आप मुझे जिस दशा में देख रहे हैं वह न होती। मैं भी किसी दफ़्तर में क्लर्क होता या आढ़त की कोई दुकान चला रहा होता।

सगे सम्बन्धी इस विवाह के विरुद्ध नहीं थे। मेरे पिता जी भी जो उन दिनों दीवानी अदालत में अर्जी नवीसी का काम करते थे, इस विवाह को पसन्द करते थे। उन्हें आशा थी कि पहली पत्नी की बहन होने के कारण उनकी दूसरी पत्नी मुझे प्यार और स्नेह से रखेगी। भानजे से मौसी को जो प्रेम होता है मैं उस से वंचित न रहूँगा। परन्तु इसके प्रतिकूल परिणाम हुआ। मेरी मौसी जो मेरी सौतेली मां बनकर आई थी, पहले ही दिन से मुझ से घृणा करने लगी थी। पहले ही दिन उसने मुझे मारा पीटा। इसके बाद मेरे प्रति उसकी उपेक्षा और घृणा मुझे कुपथ की ओर ले गई।

जब मैं स्कूल में प्रविष्ट हुआ तो मुझे फीस लेने के लिये सौतेली मां के हाथों प्रायः पिटना पड़ता था। वह मुझ से आशा रखती थी कि मैं पुराने किले के मन्दिर में मूर्ति के सामने सिर झुकाने की आड़ में श्रद्धालुओं की भेंट चढ़ाए हुए पैसे उठा लाऊं और उसके हवाले कर दूं या मन्दिर के बाहर रखे हुए किसी जूते के जोड़े पर हाथ साफ कर लाऊं। मेरी आत्मा इसे गवारा नहीं करती थी। परन्तु जब सौतेली मां के हाथों पिटता तो उस के इशारों पर चलने के लिये विवश हो जाता।

धीरे-धीरे मेरी यह आदत बन गई कि मैं मन्दिरों और गुरु द्वारों में जाकर श्रद्धालुओं के भेंट किये हुए रुपये पैसे चुरा लेता। आरम्भ में तो मां के हवाले कर देता था फिर बाद में एक भाग अपने

पास रख लेता था और उस से फ़िज़ूल खर्चा करता। पढ़ने से जी उकता रहा था प्रायः स्कूल से अनुपस्थित रहता। लड़कों को पीटता, अध्यापकों के विरुद्ध मोर्चे बनाता और रा. चलती लड़कियों से छेड़छाड़ करता। आप यह कहेंगे कि यह मेरी गलती थी किन्तु जब घर का वातावरण ही मेरे लिये बिगड़ चुका हो तो मैं इसके सिवा कर भी क्या सकता था कि घटनाओं के प्रवाह के साथ लुढ़क जाऊं, भावुकता जिधर ले जाए उधर ही बह जाऊं।

रावलपिन्डी शहर से बाहर एक बहुत बड़ी सराए है। यह सराए एक बहुत बदनाम जगह है। मैंने अपने आवारा गर्द साथियों से, जिन में से एक नवयुवक करीम बहुत प्रसिद्ध था सुन रखा था कि उस सराए में बहुत सी सुन्दरियाँ रहती हैं। करीम मुझे बताया करता था कि वह प्रायः वहाँ जाता है और जीवन का आनन्द प्राप्त करता है।

करीम एक बहुत आवारागर्द नवयुवक था। रावलपिन्डी में सैयद पुरी पर "मामू के हमाम" के नाम से जुवारियों और कोकीन बेचने वालों का एक अड्डा है। करीम उस अड्डे के मुखियाओं में से एक था। उसके पास रुपयों की कमी नहीं होती थी। जुवारी आते और सारा-सारा दिन खेलते रहते। करीम सब से कमीशन वसूल करता था। कमीशन लेने के अतिरिक्त वह राह चलती लड़कियों से छेड़छाड़ भी किया करता था।

एक दिन मैं सौतेली मां के हाथों बुरी तरह पिटा। पिटने का कारण यह था कि मैंने सौतेली मां की एक अँगूठी चुरा कर बेच दी थी। पिता जी आए तो उन्होंने मां की शिकायत सुनकर और भी मुझे मारा पीटा। दंड देने के लिये उन्होंने मुझे स्नान

गृह के अन्दर बन्द कर दिया और दो तीन दिन के लिए भूखे प्यासे रखा। जब बाहर निकाला तो मैं अर्ध मूर्छित अवस्था में बड़-बड़ा रहा था और माता जी कह रही थीं कि इस कपूत से तो कोई पत्थर होता तो अच्छा था। पिता जी कह रहे थे कि अब के इसने ऐसी कुचेष्टा की तो इसे हवालात में ऐसा बन्द कराऊंगा कि उम्र भर बाहर नहीं निकल सकेगा।

उस दिन मैं बहुत रोया। परन्तु न तो माता जी को तरस आया, न ही पिता जी के हृदय में ममता जागी। माता जी कह रही थीं कि इसे स्कूल से उठा लेना चाहिये और किसी हलवाई या दर्जी की दुकान पर बिठा देना चाहिये। पिता जी कह रहे थे कि ऐसे बेटे को तो विष देकर मौत के घाट उतार देना चाहिए।

मैं बहुत चिन्तित और निराश था। इतने वर्ष बाद आज मैंने अनुभव किया कि मेरा भविष्य अन्धकारमय है। शाम के धुन्धलके में जब बिजली का लैम्प प्रकाशित हो रहा था मुझे एक निराशामय अन्धकार और भयानक सा वायुमंडल दिखाई दिया।

घर से बाहर निकला तो मेरे पांव काँप रहे थे। ऐसा मालूम होता था कि मानो कोई अदृष्ट शक्ति मुझे खींचे लिये जा रही है। 'मामू के हम्माम' पर प्रतिदिन की भाँति जूवा हो रहा था और करीम जुवारियों से कमीशन ले लेकर अपनी जेब भर रहा था। मुझे देखते ही करीम ने कहा—"आओ नानक आज मनोरंजन करोगे क्या ?"

मेरी आँखों में आँसू आ गये। मैं मौन खड़ा रहा। इस दशा में मुझे देख कर करीम उठ खड़ा हुआ। मेरी कमर में

उसने हाथ डाल कर कहा—"आज उदास मालूम होते हो! क्या कारण है ?"

आँसुओं का तूफ़ान जो रुका पड़ा था सहसा उठकर बहने लगा।

मैंने कहा—"मुझे घर से निकाल दिया गया है, मेरे लिए घर में कोई स्थान नहीं रहा।"

"क्या बक रहे हो ?" करीम ने मुस्कुराते हुए कहा।

"ठीक ही तो कह रहा हूँ। अब मैं उस घर में नहीं रह सकता, मुझे तो विष देकर मौत के घाट उतार दिया जाएगा।" मैंने रोते हुए रुक-रुक कर उत्तर दिया। इसके बाद मैंने वह सब कह सुनाया जो पिछले दो दिनों से मुझ पर बीता था। करीम ने गम्भीरता से सुना और फिर मेरी पीठ पर थपकी देते हुए उसने कहा—"चिन्ता न करो, तुम मेरे साथ रहो। जो काम मैं करता हूँ तुम भी करो। तुम्हें किसी प्रकार की कठिनाई सामने नहीं आएगी।"

मैं असमंजस में था। करीम से मिलने-जुलने और उसे अपना मित्र तथा शुभाकांक्षी समझने पर भी मुझे उसके काम से दिलचस्पी न थी परन्तु मैंने मौन भाव से 'हाँ' कर दी और इसके बाद कुछ इस प्रकार से उसके समीप होता गया मानो कोई शक्ति मुझे उसका साझी बनने के लिये प्रेरित कर रही हो।

जब उस दिन का मनोविनोद समाप्त हुआ तो करीम ने कपड़ा समेटते हुए कमीशन के पैसे गिने। कोई पचास रुपये थे जो करीम ने एक पाई भी खर्च किये बगैर कमाए थे।

रुपयों की थैली उछालते हुए उसने कहा—"क्यों बादशाही है कि नहीं ?"

मैंने कहा—"वास्तव में तुम रईस हो।"

"रईस बनने की आवश्यकता नहीं, रुपया एक हाथ आता है तो दूसरे हाथ निकल जाता है। हम तो यूं ही रहते हैं।" करीम ने ठहाका लगाते हुए कहा।

और जब उसी रात को करीम मुझे बाज़ार कलाँ के पास एक सकड़ी सी गली से होते हुए एक चौबारे पर ले गया तो वहाँ मैंने जो दृश्य देखा उस से मुझे विश्वास हो गया कि करीम जो कुछ कहता है वह सत्य है। करीम के लिए रुपया वास्तव में एक बहुत तुच्छ वस्तु है।

करीम के कमरे में प्रवेश करते ही एक स्त्री छम-छम करती हुई दूसरे कमरे से निकली और नमस्कार किया। करीम ने मुस्कुरा कर उसे देखा और फिर संकेत पाते ही उस सुन्दरी ने नृत्य आरम्भ कर दिया। वह नाचती और झूमती, आँखों से मुस्कुराहट बरसती और उंगलियों के इशारे करती और करीम उस पर नोट तथा रुपये फैंकता। दो एक बार मेरे समीप भी आई पर करीम ने मुझे नोट दिये कि मैं उसकी ओर फैंकूं।

करीम ने विस्की के पैग लुंढ़ाए और मुझे भी विवश किया। मैं जीवन में पहली बार यहां आया था। पहली बार ही मदिरा का प्रयोग किया था। वापस हुए तो मेरा सिर चकरा रहा था और पाँव लड़खड़ा रहे थे। उस रात मैं करीम के मकान पर ही सोया। करीम ने मुझे कहा—"इस घर को अपना घर ही समझो। यहाँ तुम्हें न माता पिता का डर होगा, न रुपये पैसों की कमी। मैं तुम्हें वह जादू सिखाऊंगा कि तुम माला माल हो जाओगे।"

रात को कब सोया और कब तक सोता रहा, इसका मुझे चेत ही न था। हाँ जब सवेरे उठा और रात की घटनाएं याद

आने लगीं, तो कभी तो मैं सोचता कि अपने घर लौट जाऊं और कभी यह सोचता कि मुझे करीम से ही अपना जीवन सम्बद्ध कर देना चाहिए।

मतलब यह कि रास्ता कठिन ही नहीं बल्कि असम्भव भी था। क्योंकि घर जाता तो मार पीट होती और मार पीट ही नहीं शायद विष ही दे दिया जाता। करीम के पास रह कर इन में से एक की भी आशंका नहीं थी। इसी प्रकार कई दिन बीते। करीम के जीवन का एक रहस्य तो मुझे मालूम हो ही गया और वह था जूवे बाजी का अड्डा चलाने की निपुणता। मैं भी सीख गया उसके दाव पेंच। करीम ने मुझे अपना शिष्य बनाया और मैंने उसे अपना उस्ताद मान लिया। मैंने वायदा किया कि जो कुछ कमाऊंगा उसका चौथा भाग उसको दे दूंगा। इस वायदे पर करीम ने मुझे पेशावरी महल्ले में एक अड्डा खोल दिया और मैं स्वतन्त्र रूप से काम करने लगा।

पन्द्रह वर्ष पहले के समय में पचास-साठ रुपये प्रतिदिन की आमदनी कोई मामूली आमदनी नहीं थी। इतने रुपये तो किसी बड़े अफ़सर को भी न मिलते थे परन्तु मुझे किसी कठिनाई का सामना किये बगैर इतनी आमदनी हो जाती थी। इस आमदनी के लिए कोई अधिक खर्च नहीं करना पड़ता था। मकान का किराया केवल दस रुपये महीना था। दस रुपये प्रति दिन पुलिस को देने पड़ते थे। पुलिस का कमीशन आवश्यक था क्योंकि इसके बिना तो जूवेबाजी का कोई अड्डा चल ही नहीं सकता था। कोतवाली के इन्चार्ज के पास मैं प्रतिदिन यह रकम अपने नौकर के हाथ भिजवा देता था इसलिये गिरफ़्तारी की आशंका नहीं थी। मुहल्ले का कोई व्यक्ति अव्वल तो

शिकायत करने का साहस ही नहीं करता था और यदि साहस करता तो उसे अपने आदमियों से पिटवा देता था। पुलिस में मेल जोल और पहुँच थी इसलिये मेरे विरुद्ध कोई व्यक्ति रिपोर्ट लिखा ही नहीं सकता था।

यदि मैं इन अड्डों के विषय में बताने लगूं तो आप दाँतों में उंगली दबा कर रह जाएंगे। मेरे अड्डे में जूवा खेलने के लिये कोई ऐरा-गैरा आदमी नहीं आता था, शहर के बड़े-बड़े धनी, वकील, बैरिस्टर, डाक्टर और व्यापारी आते थे। इन में एक साहब मिस्टर कोहली भी थे। वकालत पास थे परन्तु बाप दादा की लाखों की सम्पत्ति होने के कारण एक दिन भी कचैहरी में नहीं गये थे। वह प्रतिदिन मेरे मकान पर आते और घंटों खेलते रहते। उनके भाग्य में शायद हारना ही लिखा था इसलिये कुछ महीनों में ही उन्होंने लाखों की सम्पत्ति बरबाद कर दी। एक और बैरिस्टर साहब थे जो गार्डन कालेज के समीप रहते थे। उन्होंने एक दिन में पचास हज़ार रुपया हार दिया। उस रोज़ मुझे दो सौ रुपये की आमदनी हुई।

शहर के एक मजिस्ट्रेट जो कोयटा से आए थे और अपने आप को पठान का बेटा कहते थे प्रायः मेरे अड्डे पर आते और सैंकड़ों रुपये की हेरा-फेरी में सम्मिलित होते। छत्ती गली के एक सरदार साहब अपनी पत्नी को साथ लेकर आते और दोनों मिल कर खेलते। यह एक सौभाग्य शाली जोड़ा था। ये दोनों शायद ही कभी हारते थे।

रुपये की वृद्धि के साथ-साथ मेरे मनोरंजन भी बदलते गये। मैं जिस दिन पहली बार बाज़ार कलाँ के समीप सकड़ी सी गली के एक चौबारे में गया था, उस दिन मैंने सोचा भी न था कि

जीवन इतना आन्नदमय बन सकता है। परन्तु जब रुपया हाथ आने लगा तो मुझे अनुभव हुआ कि रुपया एक ऐसी चीज़ है जिससे संसार की प्रत्येक वस्तु खरीदी जा सकती है। प्रत्येक मनुष्य को गुलाम बनाया जा सकता है और जीवन विपत्तियों की जंजीरें तोड़ कर प्रसन्नता के वायुमंडल में प्रवेश कर सकता है। उस तंग और सकड़ी सी गली का कोई चौबारा शेष नहीं रहा जहाँ मैं नहीं गया, जहाँ मैंने सुन्दरियों की कोमल भावनाओं को नहीं कुचला और जहाँ मैंने जीवन को प्रसन्नता के झूले-झूलते हुए नहीं देखा।

उस गली में एक सुन्दरी सरदाराँ से जो बारह मूला से आई हुई थी, मुझे प्रेम हो गया था। वह भी मुझे बहुत चाहती थी। पहले पहल तो मैंने उस पर बहुत रुपया खर्च किया। परन्तु जब उसे मुझ से प्रेम हो गया तो वह मुझ से एक पैसा भी नहीं लेती बल्कि अपने ही पैसे से मेरी आवभगत करने लगी। मैं जब भी उसके कमरे में जाता वह सब को उठा देती। फिर हम घंटों बैठ कर परस्पर मनोरंजक वार्तालाप में तल्लीन रहते।

सरदाराँ जिस व्यक्ति के कब्जे में थी उसका नाम खुदा बख़श था। यह संग जाति के किसी पीर का लड़का था जो युवावस्था में ही आवारा हो गया था। पहले तो उसने अपने पिता का हज़ारों रुपया इन अड्डों में नष्ट किया और बाद में सरदाराँ का नौकर तथा रक्षक बन कर ठहर गया। सरदाराँ अपनी सारी कमाई उसको सौंप देती थी और वह घर के सारे खर्चों को चलाता था।

एक दिन मैं अपने मकान पर बैठा हुआ विस्की के पैग लंढा रहा था कि खदाबख़श ने परदा उठा कर कमरे में

प्रवेश किया। उसके मुख पर निराशा के चिन्ह दृष्टिगोचर हो रहे थे।

मैंने कहा—"क्यों खुदाबख्श आज इस ओर कैसे आना हुआ ?" वह मौन रहा और उसकी आँखों से आँसू बहने लगे। मैंने विस्की का गिलास रख दिया और गम्भीरता पूर्वक पूछने लगा—"आखिर बताओ तो बात क्या है ?"

खुदा बख्श कुछ देर उसी प्रकार मौन रहा। इसके बाद उसने कहा—"हज़ूर यदि आप रुष्ट न हों तो एक बात कहूँ ?"

मैंने कहा—"हाँ कहो।"

खुदा बख्श कहने लगा—"आप जिस सरदाराँ से प्रेम करते हैं मैं भी किसी समय उससे प्रेम करता था। उसके लिये मैंने हज़ारों रुपये खर्च किये, मां बाप और सम्बन्धियों में अपमानित हुआ परन्तु उस पाषाण हृदय स्त्री को तनिक भी दया न आई। उसने मेरा जीवन नष्ट कर दिया। आखिरकार उसने मेरी इतनी बात मानी कि मैं उसका नौकर बन कर रहूँ किन्तु प्रेम का नाम न लूं। मैंने यह भी स्वीकार कर लिया। मुझे आशा थी कि एक न एक दिन इसे मुझ से प्रेम होगा और मेरे हृदय की अभिलाषा पूरी हो जाएगी। मुझे यह समय आता हुआ समीप ही दिखाई दे रहा था कि आप सहसा हमारे बीच एक लोहे की दीवार बन कर खड़े हो गये। सरदाराँ आप से प्रेम करती है और मुझ से घृणा !—अब मैं क्या करूँ, जीवन में आशा का कोई रास्ता दृष्टिगोचर नहीं होता।"

मुझे खुदा बख्श से किसी सीमा तक सहानुभूति उत्पन्न हुई। मैंने कहा—"बताओ मैं क्या कर सकता हूँ। क्या सरदाराँ को छोड़ दूं ? उसके पास न जाऊँ ?"

खुदा बख्श कहने लगा—"मेरा यह मतलब नहीं, मैं आप के रास्ते में बाधा क्यों बनूं—परन्तु—"

"तुम जो चाहो करने के लिए तैयार हूँ।" मैंने उत्तर दिया।

"आप मुझे कुछ रुपया दें, मैं आप से अलग हो जाऊंगा।"

"कितना ?"

"केवल एक हज़ार।"

"उससे क्या करोगे ?"

"कोई लड़की खरीद लाऊँगा और उसे अपने पास रख कर जीवन निर्वाह का कोई ढंग निकाल लूंगा।"

मैं चौंक पड़ा। मैंने कहा—"रुपया तो मैं दे दूंगा क्योंकि एक हज़ार रुपये में यह सौदा महंगा नहीं, परन्तु यह बताओ कि एक हज़ार रुपये में लड़की मिल सकती है, और फिर उससे तुम्हारा निर्वाह हो जाएगा ?"

खुदा बख्श ने कहा—"क्यों नहीं ! हज़ूर एक हज़ार रुपया बहुत बड़ी चीज़ है। मैं मुज़फ्फर आबाद या ऐबटाबाद जाऊंगा, कोई अच्छी सी लड़की ले आऊँगा और फिर कभी सरदाराँ के कमरे में पाँव भी न रखूंगा।"

"और आमदनी ?"

"वह तो हो ही जाएगी। यहाँ नहीं होगी तो पेशावर चला जाऊंगा। गुज़ारे की कोई सूरत निकल ही आएगी।"

मैं एक क्षण के लिये मौन रहा और फिर एक हज़ार रुपये के नोट उसके हवाले करते हुए मैंने कहा—"तुम्हें किसी समय भी किसी चीज़ की आवश्यकता हो तो मेरे पास चले आना, और देखना सम्भव है किसी समय मुझे भी तुम्हारी आवश्यकता पड जाए।"

खुदा बख़्श सम्मान से सिर झुका कर चला गया और उसी शाम उस सकड़ी सी गली में से होकर मैं सरदाराँ के पास गया और उसे वहाँ से अपने मकान पर ले आया।

सरदाराँ की उम्र कोई बीस बाईस वर्ष की थी। मेरी उम्र उस से कुछ कम ही थी परन्तु एक तो प्रेम था दूसरे रुपया, इसलिये हम दोनों एक दूसरे के बहुत समीप आ चुके थे।

आप विश्वास कीजिये कि आरम्भ में मेरा विचार यही था कि सरदाराँ को पत्नी की भाँति अपने पास रखूं, परन्तु मेरे अड्डे पर आने वाले लोग इस ढंग के थे कि हज़ार प्रयत्न करने पर भी मैं अपने उद्देश में सफल नहीं हो सका।

छत्ती गली के जो साहब अपनी पत्नी सहित जूवा खेलने आते थे, उन्होंने मुझे वह रास्ता दिखाया जिस पर चल कर सरदाराँ मेरी पत्नी न रह सकी। उसकी पत्नी मेरी घरवाली से घुल मिल कर चलती थी और दोनों सहेलियाँ बन चुकी थीं। दोनों न केवल जूवा खेलने में भाग लेने लग गई थीं बल्कि प्रायः सैर करने के लिये बाहर भी साथ चली जाती थीं। और तब कुछ दिनों के बाद मुझे मालूम हुआ कि मैं जो कुछ चाहता हूँ वह नहीं हो सकेगा।

सरदाराँ तीन चार वर्ष से सकड़ी सी गली में रह रही थी अतः उसके परिचितों की संख्या मेरे अन्दाज़े से वास्तव में बहुत अधिक थी। थाने का अफ़सर जो मुझ से दस रुपये प्रति दिन लेता था और पठानज़ादा मजिस्ट्रेट जौहर दूसरे तीसरे दिन जूवे के लिये पहुंच जाते थे, और भी कितने ही व्यक्ति उसके चाहने वालों में से थे। इसलिए मुझे अपनी इच्छा के विरुद्ध सरदाराँ के चाहने वालों के संकेत पर चलना पड़ा। इन्कार

करता तो दस रुपये प्रतिदिन लेने वाला अफ़सर मुझे गिरफ़्तार कर लेता, पठानज़ादा मजिस्ट्रेट जेल में डाल देता और वकील मेरे विरुद्ध कचैहरी मे अरज़ी पेश कर देते। इस प्रकार मैंने परिस्थितियों से विवश होकर जूवेबाज़ी के बाद उस रास्ते पर पाँव रखा जिसे मैं कभी पसन्द नहीं करता था। सरदाराँ के कारण मुझे जिस व्यक्ति के हाथों पहली बार अपमानित होना पड़ा उसका नाम मेहरबान अली था। वह डिप्टी कमिश्नर के दफ़्तर में हेड क्लर्क था। उसने डिप्टी कमिश्नर के दफ़्तर से मुझे एक नोटिस भेजा। जिसमें लिखा था कि मैं कारण बताऊं कि क्यों न मुझे दुराचार और जूवेबाज़ी के अड्डे चलाने के अपराध में शहर से बाहर निकाल दिया जाए।

मैंने अपने पुलिस वाले मित्र से पूछा। उसने कानों को हाथ लगाए और कहने लगा—"मेहरबान अली बहुत कठोर स्वभाव का मनुष्य है। उसे तुरन्त प्रसन्न कर लो नहीं तो तुम्हें हमेशा के लिये जेल की कोठरी में सड़ना पड़ेगा।"

मैंने पूछा—"तो क्या मियां साहब को डाली देनी होगी ?"

उसने कहा—"हाँ !"

मैंने पूछा—"कितनी ?"

"कितनी का तो प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता।" दारोग़ा ने गम्भीरता से कहा—"वह एक और चीज़ का इच्छुक है।"

"वह क्या ?" मैंने आश्चर्य से पूछा।

"सरदाराँ का।" दारोग़ा जी ने कन्धों को हिलाते हुए कहा—"मियां साहब सरदाराँ को जानते हैं और सरदाराँ उन्हें जानती है। मियां साहब से भेंट करा दो, मामला यहीं समाप्त हो जाएगा।"

मैं काँप उठा। मैंने कहा—"परन्तु दारोग़ा जी ! सरदाराँ तो मेरी.....

"पत्नी है। यही कहना चाहते हो ना।" दारोग़ा जी ने मुस्कुराते हुए कहा—"परन्तु दूसरी ओर जेल है। दोनों में से एक का निर्वाचन कर लो।"

फिर मुझे मौन देखकर दारोग़ा जी ने कहा—"फिर सरदाराँ कौन सी सती स्त्री है, कसाई गली की वेश्या ही तो है। कल तक बाज़ार के बीच में अपना शरीर बेचा करती थी जो चाहता उस से मिल सकता था और अब भी उसका क्या विश्वास है। दुश्चरित्र स्त्री ही तो है क्या पता कब चकमा दे जाए।"

मैंने बहुत सोचा, बहुत मस्तिष्क लड़ाय परन्तु कोई युक्ति न सूझी। दारोग़ा जी निरन्तर यही कहते रहे कि मैं साहब को प्रसन्न करके छुटकारा प्राप्त कर लूं।

मुझे शस्त्र डालने ही पड़े। छाछी मुहल्ले में हैल्थ आफ़ीसर की कोठी के सामने एक मकान में जहाँ दारोग़ा जी रहते थे पार्टी का प्रबन्ध किया गया। यह भी सैसला किया गया कि मैं सारे खर्च सहन करूं। शराब के दौर चलें और सरदाराँ साकीबाला के कर्तव्य को निभाए।

खेद है कि मैंने अपने आप अपने पाँव पर कुल्हाड़ी मारी। अपने हाथों अपनी भावनाओं और लज्जा का खून किया। मियां साहब झूमते झामते आये। मैंने एक सेवक की भाँति उनका स्वागत किया। सरदाराँ ने भी वही अभिनय किया जिसे छोड़ने का उसने एक बार दृढ़ निश्चयी होकर कसम खा ली था।

उसके मुख पर फिर वही मुस्कुराहट खिली, उसकी आँखों में फिर एक बार वही चमक उन्पन्न हुई और उसके केशराशि

एक बार फिर उसी प्रकार बिखरी, जो कुछ दिनों पहले प्रतिदिन उसके जीवन का स्वभाव था।

मुझे अपनी भावनाओं का खून करते हुए भरी महफ़िल से उठ जाना पड़ा। मैंने सब कुछ खून के घूंट पीते हुए सहन किया।

जब मियां साहब विदा हुए और सरदाराँ मेरे समीप आई तो वह काँप रही थी। उसका मुख पीला पड़ रहा था। मेरी आँखों से भी आँसू निकल आये।

और दारोग़ा साहब कह रहे थे—"नानक चन्द चिन्ता न करो, तुम्हारा चालान रद्द कर दिया गया है। मियां साहब वास्तव में तुम पर बहुत मेहरबान हैं।"

: दो :

जेलर साहब

छाछी मुहल्ले से तांगे पर सवार होकर हम अपने घर आ रहे थे तो इतनी शर्मिन्दगी हो रही थी कि मुझे सरदाराँ से बात चीत करने का साहस ही नहीं हुआ। घर में प्रवेश किया और अपने कमरे में बैठा तो मैंने देखा कि सरदाराँ रो रही थी। पहले तो मैं उस से कहने का साहस ही न कर सका, किन्तु जब उसके आँसू पूंछने लगा तो उसने कहा—"रहने भी दो, मैं तुम्हें पुरुष समझती थी परन्तु आज की घटना से ज्ञात हो गया कि तुम एक स्त्री से भी अधिक डरपोक हो।"

मैं मौन हो गया।

वह कहने लगी—"जब मुझे अपनी जीवन संगिनी बनाया था तो तुमने कहा था कि आज से तुम्हारा पुराना जीवन समाप्त हो गया है। यदि मुझे मालूम होता कि तुम भी वही काम करोगे तो मैं कभी भी तुम से प्रेम न करती और अपने आप को तुम से न बाँधती।"

मेरी आँखों से आँसू बह रहे थे। मैंने कहा—"तुम ठीक कहती हो। मैं वास्तव में बहुत गिर गया हूँ। परन्तु कोई रास्ता दिखाई भी तो नहीं देता, क्या करूं और क्या न करूं।"

"मुकाबला करो, साहस से काम लो।" सरदाराँ ने गम्भीरता से कहा।

"तो हमें यह अड्डा बन्द कर देन पड़ेगा, आमदनी के इस ज़रिये से वंचित होना पड़ेगा।" मैंने उत्तर दिया।

"तो बेचे जाओ अपनी लज्जा को। रुपया कमाना ही जीवन का ध्येय है तो इस स्थान पर क्यों बैठे हो, वहीं चलो जहाँ से मुझे सब्ज़बाग दिखा कर लाए थे।"

मैंने सिर पीट लिया, बच्चों की भाँति नौ-नौ आँसू बहाने लगा और सरदाराँ कहे जा रही थी—

"यह दूषित जीवन है। इससे तो अच्छा है कि इस शहर को छोड़ कर किसी दूसरे स्थान पर चले चलो और मेहनत मज़दूरी से अपना भरण पोषण करो।"

मैंने पूछा—"तुम जीवन के कष्ट सहने के लिये तैयार हो? भूखी रहोगी, घबराओगी तो नहीं?"

उसने कहा—"मैं हर विपत्ति का सामना करने के लिए तैयार हूँ परन्तु यह जीवन पसन्द नहीं करती। मुझे इससे बहुत अधिक घृणा है।"

उस रात हमने निश्चय कर लिया कि शहर छोड़ कर रहेंगे और किसी दूसरी जगह जाकर बसेंगे। सरदाराँ के विचार में लाहौर इसके लिये योग्य स्थान था। मैंने भी उसकी हाँ में हाँ मिलाई।

वास्तव में मेरी हार्दिक इच्छा थी कि मैं सम्मान का जीवन व्यतीत करूँ। मैंने कहा—"अपने पास पाँच छः हज़ार रुपये हैं जब तक कोई दूसरा काम नहीं बनता इन्हीं को खर्च करेंगे।"

दूसरे दिन जब दारोग़ा जी आए तो यह देख कर चकित

रह गये कि मैंने जूवे बाज़ी का अड्डा बन्द कर दिया है।

उन्होंने मुस्कुराते हुए कहा—"तो अब शरीफ़ बेटे बन गये हो!

मैंने मौन भाव से गर्दन झुका कर सहमती में उत्तर दिया।

दारोग़ा जी एक क्षण के लिये मौन हो गये इसके बाद उन्होंने गम्भीरता से कहा—"और सरदाराँ?"

"मेरे साथ लाहौर जाएगी। हम वहाँ ही रहेंगे।" मैंने गम्भीरता से उत्तर दिया—"अब हम इस दूषित जीवन से छुटकारा प्राप्त करना चाहते हैं।"

दारोग़ा जी हंस पड़े। उनकी हंसी में चुटकी थी। कहने लगे—"इस पतित स्त्री के साथ रहकर तुम सज्जन बनोगे?" यह कहते हुए उन्होंने ज़ोर का ठहाका लगाया।

मुझे क्रोध आया। मैंने कहा—"दारोग़ा साहब! होश से बात कीजिये सरदाराँ मेरी पत्नी है। मैं उसके सम्बन्ध में कोई भी धृष्टता सहन नहीं कर सकता।"

दारोग़ा जी एक क्षण के लिये मौन हो गये और यह कहते हुए चले गये कि—"आज ही छटी का दूध याद न करा दिया तो मेरा नाम नहीं।"

उसी शाम को जब मैं लाहौर जाने के लिये सामान तैयार कर रहा था कि पुलिस की एक टुकड़ी ने मेरे मकान को घेर लिया। मैं हक्का-बक्का रह गया। पूछना चाहता था कि हवलदार ने आगे बढ़ते हुए कहा—"तुम्हारे वारंट हैं, तुम दोनों को गिरफ़तार किया जाता है।"

सरदाराँ कमरे से बाहर निकली, उसने पूछा—"किस अपराध में आप हम को गिरफ़्तार कर रहे हैं?"

"तुम बदमाश हो, जूवा खाना खोल रखा है और व्यभिचार कराते हो।" हवलदार ने चिल्लाते हुए कहा।

इससे पहले कि हम और कुछ कहते उन्होंने हमें मारना-पीटना आरम्भ कर दिया। हमारी आवाज़ सुन कर और पुलिस के समूह को देख कर दर्जनों व्यक्ति इकट्ठे हो गये। सब के सब कह रहे थे—"बहुत अच्छा हुआ यह बदमाश गिरफ़तार हो गये, इन लोगों ने तो मुहल्ले का नाक में दम कर रखा था।"

एक बूढ़े आदमी ने आगे बढ़ते हुए कहा—"धन्यवाद दो दारोग़ा साहब को, कि उन्होंने इन बदमाशों को अपने शिकंजे में कस लिया, वरना इन पर हाथ उठाना किस के बस की बात थी।"

सब लोग पुलिस और दारोग़ा जी की प्रशंसा कर रहे थे। और जब पुलिस हमें घूंसे मारती हुई पैदल थाने में ले गई तो एक जन समूह यह तमाशा देखने के लिये हमारे पीछे-पीछे आ रहा था।

थाने में जाते ही हम लोगों को हवालात में बन्द कर दिया गया। हमारे पास जो कुछ था वह छीन लिया गया और तीन चार कम्बल दे दिये गये। हमें कहा गया कि यही तुम्हारा बिछौना है और यही घर का सामान। अब मुकदमा चलेगा और तुम दोनों को जेल जाना होगा।

दो दिन तक हमारी बहुत बुरी दशा हुई। प्रतिदिन पीटा जाता। दारोग़ा जी सामने आते ही न थे दूसरे ही आदमियों से पिटवाते। हमारा बुरी दशा हो रही थी। मारपीट, अपमान और भूक ने दो दिन में हमारे होश भुला दिये। सरदाराँ का

सारा साहस समाप्त हो चुका था और मैं भी हिम्मत हार चुका था। हम दोनों ने रो रोकर बुरी दशा बना रखी थी। तंग आकर एक ही रास्ता दिखाई दिया और वह यह कि दारोग़ा साहब से हम क्षमा मांग लें और इस प्रकार छुटकारा प्राप्त कर लें।

बहुत अनुनय विनय की सिपाहियों से और हवलदार से, कि किसी प्रकार हमें दारोग़ा साहब से मिला दिया जाए परन्तु उन्होंने साफ़ इन्कार कर दिया। हमारा रिमांड लिया गया और हम फिर हवालात में बन्द कर दिये गये।

एक दिन हवलदार सरदाराँ को बुलाकर ले गया और फिर सरदाराँ लौट कर न आई। मैं बहुत दुखी हुआ, बहुत सटपटाया। बड़ी कठिनता से पता लगा तो यह कि सरदाराँ मेरे विरुद्ध हो गई है। मेरी शक्ल भी देखना नहीं चाहती। उसे छोड़ दिया गया है और मेरे विरुद्ध उसे बहकाने के अपराध में मुकदमा चलेगा।

मैं चकित और व्याकुल था। मैंने तो सरदाराँ के लिये ही इतना झगड़ा मोल लिया था और वह मुझ से अलग होते ही मेरी शत्रु बन गई थी। बहुत रोया, बहुत सटपटाया परन्तु कुछ न बना। मेरे विरुद्ध मुकदमा चला, सरदाराँ मेरे विपक्ष में सामने आई। उसने कचैहरी में कहा—"कि मैं उसे अपने गुंडों की सहायता से उठा लाया हूँ और उसे उसकी इच्छा के विरुद्ध अपने पास रखे हुए हूँ।"

मुझे दो साल कैद सख्त की सज़ा हुई और डिस्ट्रिक्ट जेल भेज दिया गया।

लोग कहते हैं कि कचैहरी यानी न्यायालय न्याय और इन्साफ के लिये हैं, पुलिस और मजिस्ट्रेट शान्ति रखते हैं।

परन्तु मुझ से जो व्यवहार हुआ, मुझे जिस प्रकार झूठे मुकदमे में फंसाया गया और सज़ा दी गई, इस लिए मैं तो यह कह सकता हूँ कि इस के विषय में मेरा अनुभव और दृष्टिकोण सर्वथा विपरीत है।

जेल जाकर मैंने सोचा कि बेईमान पुलिसअफ़सर, लोगों को स्वयं गुंडागर्दी की ओर प्रेरित करते हैं, उन्हें सभ्य बनने से रोकते हैं और चाहते हैं कि वो बदमाशी का रास्ता ग्रहण करें ताकि उनकी जेबें गर्म होती रहें और भोग विलास की सामग्री भी मिलती रहे।

और जेल—उसकी दुनिया तो सर्वथा भिन्न है। सुनता था कि जेल का उद्देश्य मनुष्य के जीवन को सुधारना है परन्तु मेरा अनुभव इसके विपरीत था। मैं इस नतीजे पर पहुँचा कि जेल की कैद भले चंगे मनुष्य को भी शैतान, डाकू और लुटेरा बना देती है। जेल में आकर कई प्रकार के मनुष्य देखे। उनमें से एक जेब कतरा था। उसका नाम हरी था और वह रावलपिन्डी के समीप किसी गाँव का रहने वाला था। उसने बताया कि उसने जेब काटने से तोबा कर ली थी परन्तु दारोगा जी ने उसे बुलाकर कहा—"हरी यदि तुम यह काम छोड़ दोगे तो हम किस प्रकार निर्वाह करेंगे। अपना काम जारी रखो वरना गिरफ़्तार कर लिये जाओगे।" उसने दो तीन बार अपने जीवन को बदलने का प्रयत्न किया परन्तु वह सफल न हुआ। अन्तिम बार चेष्टा की थी कि उसे एक लड़की को छेड़ने के झूठे अपराध में फंसा कर सज़ा दिला दी गई।

मैंने कहा—"अब छूट कर क्या काम करोगे?"

हरी खिलखिला उठा। कहने लगा—"जेब काटने का काम

सब से अच्छा है। दारोग़ा साहब की जेब भी काटूंगा।"

मैं भी खिलखिला कर हंसने लगा। मैंने कहा—"यार तब तो कमाल हो जाएगा।"

हरी एक अनुभवी जेब काटने वाला था। उसने मुझे कहा—"तुम जब छूट कर आओ तो मुझ से अवश्य मिलना, हम दोनों मिल कर काम करेंगे।"

मैंने कहा—"यदि फिर गिरफ़्तार हो गये तो ?"

"गिरफ़्तार!" वह खिलखिला कर हंस पड़ा और कहने लगा—"अब मुझे कोई गिरफ़्तार नहीं कर सकता। मैंने सफलता का गुर सीख लिया है। गिरफ़्तार करने वालों को नियमित रिश्वत देता रहूँगा तो फिर कौन गिरफ़्तार करेगा ?"

एक सरदार जी थे। नाम तो याद नहीं रहा, हाँ इतना याद है कि वह डिग्गी खोई में झटकई थे। मांस बेचने के साथ ही नाजायज़ शराब भी बेचते थे। उनसे गिरफ़्तारी का कारण पूछा तो कहने लगे—"गलती हो गई। दारोग़ा जी को पच्चीस रुपये महीना दिया करता था और सेर भर गोश्त प्रति दिन पहुँचाया करता था। उस दिन उनके महमान आ गये। सवेरे ही कहला भेजा कि पाँच सेर गोश्त भिजवा दूं। मैंने कह दिया कि अभी बोहनी भी नहीं की कि मुफ़्तखोरे आ गये। यह बात दारोग़ा जी तक पहुँचनी ही थी कि शाम को छापा पड़ गया और नाजायज़ शराब बेचने के अपराध में गिरफ़्तार कर लिया गया। छोटी सी धृष्टता का दंड भुगत रहा हूँ।"

एक साहब थे किसी बैंक के क्लर्क, गबन के अपराध में दो साल क़ैद की सज़ा भुगत रहे थे। उन्हें जेल में भी मुर्ग़े मिल जाते थे।

मैंने पूछा तो हंस कर कहने लगे—"यह से का खेल है पैसा हो तो जेल भी घर है।"

मेरे आग्रह करने पर उसने बताया कि जेल के इन्चार्ज को पचास रुपये महीना देता हूँ, घर से खाना आ जाता है।

गुर मिल गया। मैंने कहा मेरा प्रबन्ध भी करवा दो, मैं भी पचास रुपया महीना देने के लिये तैयार हूँ।

बात पक्की करते देर नहीं लगती। मैंने परचा लिख दिया। घर में जो रुपया बाकी था सब इन्चार्ज को मिल गया और मुझे उनके घर से ही खाना तैयार होकर मिलने लगा।

एक दिन उन्होंने मुझे बुलाकर कहा—"नानक! एक बात कहूँ, मानोगे?"

मैंने कहा—"क्यों नहीं, आप ने मुझ पर इतना ऐहसान किया है तो क्या मैं इतना भी नहीं कर सकता?"

वह मौन हो गये। इसके बाद कहने लगे—"तुम छुट सकते हो, मैं अपील का प्रबन्ध करूंगा। परन्तु छूट कर एक काम करना होगा!"

मैंने पूछा—"वह क्या?"

उन्होंने रुक-रुक कर जो कुछ कहा उसका साराँश यह था कि मैं वह काम दोबारा शुरू कर दूं जो मैंने सरदाराँ को प्राप्त करने के बाद किया था।

मैंने सहमती प्रकट की। वह कहने लगे—"पता मैं बता दूंगा, जहाँ से लड़कियाँ मिल सकती हैं। तुम कारोबार आरम्भ करो मेरा भी हिस्सा रख देना।"

मैंने कहा—"यदि मैं पकड़ा गया तो?"

वह हंस पड़ा। कहने लगा—"तुम्हें कोई भी गिरफ़्तार नहीं

कर सकता। मैं ऐसा चक्कर चलाऊंगा कि तुम शहर के गिने चुने व्यक्तियों में से माने जाने लगोगे। कोई तुम्हारी ओर उंगुली भी नहीं उठा सकेगा।"

मेरा सौभाग्य था कि अपील स्वीकृत हो गई और मुझे इस नुक्ते पर ही मुक्त कर दिया गया कि सरदाराँ एक बालिग स्त्री है। कचैहरी में उसका बयान ग़लत था क्योंकि उसके बयान का किसी ने भी अनुमोदन नहीं किया था।

जब मैं मुक्त हुआ तो सब से पहले जो व्यक्ति मिला वह दारोग़ा ही था। उसने कहा—"देखो अबकि बार तुम्हें बचा लिया है अब यदि इधर उधर फिसलने का प्रयत्न करोगे तो आयु पर्यन्त जेल की हवा खानी पड़ेगी।"

मैं विस्तार में जाना नहीं चाहता था। यह कहना नहीं चाहता था कि तुमने ही मेरा जीवन नष्ट किया है। मैं तो गुर-सीख कर आया था। मैंने कहा—"यह आप की कृपा का ही परिणाम है कि मैं जीवित रह गया वरना न जाने मेरी क्या दशा होती।"

दूसरे स्थान का प्रबन्ध करने में कोई देर नहीं लगी। दारोग़ा जी ने ही दीवानी अदालत के पीछे मन्दिर के पास एक मकान का प्रबन्ध करा दिया और शीघ्र ही जूवे बाज़ी का अड्डा चालू हो गया।

जेल वाले मित्र भी मिलने लगे। हरी भी बहुत प्रसन्न था। हम दोनों साझी हो गये। सरदार जी साहब से भी सहायता मिलने लगी। और जब जेल के इन्चार्ज मुझ से मिलने आये तो उनके साथ दो सुन्दर और जवान लड़कियाँ थीं।

मेरे मालूम करने पर उन्होंने बताया कि इन्हें चकवाल से

लाया गया है। केवल दो सौ रुपये इन के सम्बन्धियों को देकर इन्हें इस कारोबार में सम्मिलित किया जाएगा, और फिर होगी दौलत की वर्षा।

वास्तव में धन की वर्षा होने लगी। जूवे खाने से पाँच-पाँच सौ रुपये प्रतिदिन आमदनी होती। सब कुछ देने दिलाने के बाद सौ से अधिक बच जाता। दूसरे काम में साझीदारी से भी पचास साठ रुपये प्रतिदिन मिल जाते और कृष्णा तथा जमीला के गाहकों का तो कोई ठिकाना ही न था। बिन बुलाये महमानों के अतिरिक्त जो व्यक्ति आते, उनसे दो तीन सौ रुपये प्रतिदिन बच जाते।

दिखावा कर रखा था कि एक पत्नी है और दूसरी बहिन। दोनों ने इतनी अच्छी तरह से अपना पार्ट अदा किया कि साधारण व्यक्तियों को पता ही न लग सका।

इस जीवन में प्रवेश करने से कई भेद खुले।

एक वकील थे। गार्डन कालेज के समीप रहते थे। वह पक्के गाहकों और मेहमानों में थे। उनके कारण कई और मित्र बने और इस प्रकार से व्यापार उन्नति करने लगा।

जेलर साहब वास्तव में उस्ताद थे। उन्होंने मुझे कई सोसाएटियों से परिचित कराया। मैं उन्हें चन्दा देता और वह लोग मुझे धन्यवाद देते, मेरी प्रशंसा के पुल बान्धने लगते। सरकारी स्थानों में मैं साक्षी बन कर पेश होता, अफ़सर अपने बराबर कुर्सी देते। सभ्य व्यक्तियों को खड़ा होना पड़ता परन्तु मुझे आदर से बिठाया जाता। मेरा नाम विश्वासी व्यक्तियों की सूची में लिख लिया गया।

उन दिनों काँग्रेस ने शराब खानों पर पिकेटिंग आरम्भ कर

रखी थी। काँग्रेस के नेता बाहर से आते और जलसों में व्याख्यान देते थे और प्रायः गिरफ़्तारियाँ भी होती थीं।

एक दिन दारोगा जी ने मुझे बुलाकर कहा—"तुम्हें एक अत्यन्त आवश्यक काम करना है।"

मैंने कहा—"मैं उपस्थित हूँ।"

वह मुझे एक अंग्रेज अफ़सर की कोठी पर ले गये और सलामी देकर कहा—"हज़ूर नानक उपस्थित है। आप की प्रत्येक सेवा करने के लिये तैयार है।"

साहब ने चश्मा उतार कर मुझे देखा और मुस्कुराते हुए कहा—"वैल नानक! तुम आ गये, बैठो।"

मैं कुर्सी पर बैठ गया। साहब ने पुस्तक मेज़ पर रख दी और कहा—"तुम जानते हो यह काँग्रेस वाले बदमाशी फैलाते हैं।"

मैंने कहा—"जी हज़ूर जानता हूँ।"

साहब ने कहा—"इन्हें ठीक करना है। ये सीधे हाथों ठीक नहीं होते, दूसरा ढंग ग्रहण करना होगा।"

मैंने सिर झुका कर कहा—"सेवक उपस्थित है। उनके होश ठिकाने न लगा दूं तो नाम नहीं।"

उन्होंने अपनी इस्कीम बताई। कहने लगे—" 'अमन सभा' बनाई है तुम उसमें सम्मिलित हो जाओ और काँग्रेस के जलसों में गड़-बड़ पैदा करो तथा उन्हें गिरफ़्तार कराने में पुलिस वालों का साथ दो।"

मैंने स्वीकृति में सिर झुका लिया, प्रतिज्ञा हीन शस्त्र डाल दिये और जब मैं चलने लगा तो साहब ने कहा—"तुम सुरक्षित रहोगे, तुम्हारे कारोबार में कोई हस्ताक्षेप नहीं

करेगा।"

घर पहुँच कर एक बार तो मैंने अवश्य सोचा कि मैं बुरा काम कर रहा हूँ। आँखों से आँसू भी निकले परन्तु जो रास्ता पकड़ लिया था उस में इधर उधर होने की कोई गुंजाइश न थी। मैं उस गढ़े में स्वयं कूद पड़ा और ऐसा कूदा कि उस से निकलने की कोई सूरत नहीं रही।

एक दिन अमृतसर से डाक्टर किचलो एक जलसे में व्याख्यान देने के लिये आये थे। मैं पन्द्रह गुंडों को लेकर जलसे में बैठ गया। उन्होंने अपना व्याख्यान आरम्भ किया तो कई बार तालियाँ बजाईं। परन्तु जब इस्कीम के अनुसार सिग्नल दिया गया तो मैंने उठकर शोर मचा दिया और मेरे शिष्यों ने उठकर पत्थर फैंकने आरम्भ कर दिये। जलसे में गड़बड़ हो गई और पुलिस ने लाठी चार्ज आरम्भ कर दिया।

डाक्टर किचलो तो बच गये परन्तु दूसरे कितने ही गिरफ़्तार कर लिये गये।

दूसरे दिन जब साहब से मिलने गया तो उन्होंने मुस्कुराते हुए कहा—"शाबाश नानक! हम तुम से बहुत प्रसन्न हैं।" और उस दिन उन्होंने एक सौ रुपये के नोट के अतिरिक्त एक प्रमाण पत्र भी दिया।

—:*:—

: तीन :

पहले सदमे के बाद

साहब की वह मुस्कुराहट, शाबाशी और प्रमाण पत्र मेरे बहुत काम आए। कई छोटे हवलदार, सिपाही और सरकारी नौकर तो मुझ से शीघ्र ही प्रभावित हो गये। क्योंकि वह जानते थे कि साहब से मेरी जान पहचान है।

दिन इसी प्रकार बीतते गये। एक दिन दारोग़ा जी एक और व्यक्ति को ले कर मेरे पास आये। उसकी बड़ी-बड़ी मूंछें थीं और उसने मशहदी लुंगी सिर पर बाँध रखी थी तथा हाथ में हन्टर था। मैंने समझा कि कोई सरकारी अफ़सर है। मैंने उसे कई बार जलसों में घोड़े पर चढ़े हुए देखा भी था।

दारोग़ा जी परिचय क़राते हुए कहने लगे—"यह चौधरी साहब हैं, हमारे मित्र और 'अमन सभा' के सदस्य। आपके साथ सभा का काम किया करेंगे।"

मैंने आदर सहित बढ़कर हाथ मिलाया तो चौधरी साहब ने मुस्कुराते हुए कहा—"सेवक को चौधरी हुकमचन्द आनन्द कहते हैं। सेवक पुलिस का अफ़सर नहीं बल्कि सरकार का एक छोटा सा नमक खोर है।"

फिर हम तीनों खिलखिला कर हंस पड़े। मैंने कहा—"तो

सेवक उपस्थित है। आइये, पधारिये।"

दारोग़ा जी कहने लगे—"चौधरी साहब की सेवा से प्रभावित होकर साहब ने सिफ़ारिश की है कि इन्हें दरबारी और कुर्सी नशीन बना दिया जाए। अगली सूची में इसकी घोषणा भी हो जाएगी।"

मैंने कहा—"बहुत खूब ! हम तो कोरे अमन सभा के सदस्य हो रहे।"

"इसी के कारण तो गुलछर्रे उड़ा रहे हो हज़रत।" दारोग़ा जी ने खिलखिला कर हंसते हुए कहा—"आज किस की मजाल है कि तुम पर उंगली भी उठा सके, यह भी तो साहब की कृपा का ही फल है।" दारोग़ा जी पुनः हंस दिये।

तीन चार दिन बाद साहब ने फिर बुला भेजा। गया तो कहने लगे—"एक बहुत आवश्यक काम करना है। है तो कुछ खतरे वाला, परन्तु यदि तुम सफल हो गये तो बहुत सा इनाम पाओगे। सरकार से तुम्हारे लिए विशेष सिफ़ारिश करूंगा।"

मैंने शिष्टाचार से झुक कर कहा—"आपकी आज्ञा सिर आँखों पर, तुरन्त करूंगा।"

साहब ने बताया कि वह कुछ कांग्रेसियों को गिरफ़्तार करना चाहते हैं। कोई दूसरा ढंग दिखाई नहीं पड़ता। उनके घरों में बम रखने होंगे और फिर पुलिस उन्हें एक दम छापा मार कर गिरफ़्तार कर लेगी।

मैं एक क्षण के लिये मौन हो गया तो साहब ने कहा—"डर गये, इतना सा काम भी नहीं कर सकोगे क्या ?"

मैंने संभल कर कहा—"अवश्य करूंगा। हज़ूर के लिए जान पर भी खेल जाने के लिए तैयार हूँ।"

साहब ने कुर्सी से उठ कर मेरे समीप आकर मुझे थपकी दी और 'शाबाश' कहते हुए पाँच सौ रुपये के नोट मेरे हाथ में रख दिये और कहा—"यह काम एक दो दिन के अन्दर ही हो जाना चाहिये।"

मैंने जमीला और कृष्णा को बुलाया और उन्हें अच्छी तरह समझा कर बताया कि वह बम लेकर चालाकी से उन कांग्रेसियों के घर रख आएं।

दोनों पहले तो काँप उठीं। बम के नाम से ही उन्हें भय मालूम होता था। मैंने उन्हें धमकाया कि यदि उन्होंने ऐसा न किया तो कल ही गिरफ्तार हो जाएंगी। फिर उन्हें प्रेम और साँत्वना से समझाया।

बम दारोगा जी लाए थे। उन्होंने कहा—"यह बम फटने वाले नहीं, इसलिये डरना नहीं चाहिये। इन्हें किसी प्रकार रख आना है इसके बाद सारा काम पुलिस स्वयं कर लेगी।"

उस रात को मेरे ही मकान पर एक बड़ी शान्दार दावत हुई। जमीला और कृष्णा ने साकी का कर्तव्य पूरा किया। एक और लड़की सीता जो बाद में बम्बई जाकर ऐक्ट्रेस बन गई थी, वह भी सम्मिलित हुई। उसने नाच और गाने का प्रदर्शन किया। दारोगा जी नशे में थे। नाच और गाने की एक-एक अदा पर झूम कर इस प्रकार बहकी-बहकी बातें करते मानों अंग्रेज़ सरकार की बाग डोर इन्हीं के हाथों में है। नशे में इतने मदहोश हुए कि आधी रात को टैक्सी में बैठकर उन्हें उनके घर पहुँचाना पड़ा। इस दृश्य से मुझे इतनी अरुचि हुई कि वर्णन करना भी कठिन है।

कृष्णा और जमीला को सब कुछ समझा दिया गया था।

वह चालाकी से उन कांग्रेसियों के मकान पर गईं और भंगिनों की सहायता से उनके मकानों में बम रख आईं। जब वो वापस आईं और उन्होंने सारा किस्सा सुनाया तो मैंने साहब को सूचना पहुँचा दी।

सुबह सारे शहर में इस खबर से सन्सनी फैल गई कि पुलिस ने आधी रात के समय एक साथ कई कांग्रेसियों के मकानों पर छापा मार कर बम प्राप्त किये और उन्हें गिरफ़्तार कर लिया।

इस समाचार से मुझे प्रसन्नता भी हुई और खेद भी। प्रसन्नता इसलिये कि साहब से बहुत कुछ मिलने की आशा हो गई और खेद इसलिए कि मैंने निरापराधियों को गिरफ़्तार कराया था। और जो लोग पकड़े गये हैं उन के बाल बच्चे मुझे बददुआएं देते होंगे।

इतना होने पर भी इस घटना से मेरी स्थिति बहुत दृढ़ हो गई। मैंने झंगी मुहल्ले में एक मकान किराए पर ले लिया और अपना कारोबार आरम्भ कर दिया। कृष्णा और जमीला तो पहले ही मेरे साथ थीं और उनकी बदौलत काफ़ी आमदनी हो रही थी। अब संगजाती से एक और लड़की फ़ीरोज़ा भी आ गई। मैंने उसका नाम स्वर्ण रखा और उस का भी उपयोग करने लगा।

एक दिन दारोग़ा जी आये तो मैंने उन से कहा—"दारोग़ा जी आप से एक चीज़ की भीक माँगता हूँ।"

वह पूछने लगे—"क्या ?"

मैंने कहा—"सरदारों ने मुझे धोका दिया था। मैं चाहता

हूँ कि उसे लज्जित करूं और फिर अपने पास ले आऊं ?"

"यह भी कोई बड़ी बात है।" दारोग़ा जी ने हंसते हुए कहा—"उसे जिस समय चाहो बुलाया जा सकता है। वह तुम्हारे पाँवों की धूलि है नानक !"

और उसी शाम मेरे नौकर ने आकर बताया कि सरदाराँ गिरफ़्तार कर ली गई है। उसके कब्ज़े से कोकीन मिली है। वह इस समय हवालात में है।

थाने में गया तो हवलदार ने हवालात की ओर संकेत किया। मैंने देखा तो सरदाराँ हवालात के कोने में बैठी रो रही थी। मुझे देख कर उसने लज्जा से मुँह छुपा लिया।

हवलदार ने उसे बाहर निकाला और वह मेरे सामने आई तो उसके होंठ फड़फड़ा रहे थे। निगाहें झुकी हुई थीं और मुख पीला पड़ा हुआ था।

मेरे हाथ में हन्टर था। उस से ठेलते हुए मैंने पूछा—"अब कोकीन बेचना भी आरम्भ कर दिया है, कल को चोरी भी करोगी।"

सरदाराँ रोती हुई मेरे पाँवों पर गिर पड़ी। कहने लगी—"अब के बचा दो मुझे, तुम्हारे पाँव पड़ती हूँ। तुम्हारे सिवा मेरी सहायता करने-वाला कोई दूसरा नहीं।"

मैंने पाँव की ठोकर से उसे हटा दिया और घृणामय हंसी हंसते हुए कहा—"वह दिन भूल गई जब मैंने तुम्हारे लिए घर बार छोड़ा, गिरफ़्तार हुआ और तुमने मेरे विरुद्ध शहादत दी। अब मुझ से क्या मुँह लेकर दया की भीक माँगती हो ?"

हवलदार को सम्बोधित करते हुए मैंने कहा—"बैंतों से इस

की खाल उधेड़ दो, यह इसी योग्य है। बदमाश, कमीनी, लफंगी, दगाबाज़।"

सरदाराँ दो दिन हवालात में रही। मुझे रोज़ सूचना मिलती कि वह पिट रही है। पहले तो मुझे उस पर बहुत क्रोध आया परन्तु बाद में मेरा हृदय पिघल गया। पुराना प्रेम उभर आया। दारोग़ा जी से कह कर उसे ज़मानत पर छुड़ा लिया और अपने घर ले आया।

सरदाराँ बहुत लज्जित थी। उससे पूछा तो उसने बताया कि जब मुझे गिरफ़्तार करके हवालात में बन्द कर दिया गया था तो दारोग़ा और उसके चेले चाँटों ने उस पर बहुत सख्ती की। न केवल उसे भोजन से वंचित रखकर पीटा गया बल्कि धमकी दी गई कि यदि उसने मेरे विरुद्ध गवाही न दी तो उसे मौत के घाट उतार दिया जाएगा।

सरदाराँ उस धमकी से डर गई थी इसलिए उसने मेरे विरुद्ध गवाही दी थी।

सरदाराँ वास्तव में बहुत लज्जित थी। लज्जा के कारण ही मेरे मुक्त होने के बाद भी उसने मुझ से मिलने का साहस नहीं किया।

दूसरे दिन सुबह जब नौकर ने मुझे बताया कि बार-बार खट-खटाने के बाद भी सरदाराँ अपना कमरा नहीं खोलती, तो मैं एक कल्पित भय से काँप उठा।

किवाड़ तोड़ कर दरवाज़ा खोला गया तो जो कुछ देखा उस से मेरे पाँव तले से ज़मीन निकल गई। सरदाराँ ने अपने दुपट्टे का फन्दा बना कर फाँसी लगा ली थी। उस की जेब में काग़ज़ का एक टुकड़ा था जिस पर तीन शब्द लिखे हुए थे—"वेश्या

का हृदय"

आँसू बह निकले और बहुत रोना आया। किन्तु इस घटना को यहीं समाप्त करना था इस लिये दारोग़ा जी की सहायता से खामोशी से सरदाराँ को दफन कर दिया और उदास मुख से घर लौट आया।

सरदाराँ की मौत का मुझ पर बहुत प्रभाव पड़ा। मुझे स्वप्न में भी यह आशा न थी कि वह इतनी वफ़ादार सिद्ध होगी और अपनी भूल का प्रायश्चित अपनी मौत से करेगी। उसकी मौत ने मुझे इतना तड़पा दिया कि मैं घंटों रोता रहा। दो दिन तक खाना नहीं खाया और आज भी मुझे जब उस घटना का स्मरण हो आता है तो मेरी आँखों से आँसू बहने लग जाते हैं।

फ़िर भी समय की गाड़ी किसी बाधा की परवाह नहीं करती, उसका चक्कर चलता ही रहता है। इस संसार में अनेक प्रेम की देवियाँ आईं और सर्वदा के लिए सो गईं, कौन किसी की परवाह करता है।

पहले अध्याय में जिन कोहली साहब की चर्चा की थी, एक दिन शाम को वह एक नौजवान लड़की को लिये हुए आ गये। दोनों के मुख पीले पड़े हुए थे और दोनों सहमे हुए दिखाई देते थे। मैंने पूछा तो कोहली साहब कहने लगे—"इस लड़की को कुछ दिन अपने पास रखो, फिर मैं अपने साथ ले जाऊंगा।"

मैंने पूछा तो उन्होंने बताया कि यह लड़की एक बच्चे की मां बनने वाली है। इसलिये वह बदनामी से बचने के लिए उसे यहाँ ले आये हैं।

मैंने क्रोध में आकर कहा—"तो क्या मेरे घर को तुम लोगों ने बदमाशों और उचक्कों का ठिकाना समझ रखा है। मैं अपराधियों को आश्रय नहीं दिया करता।"

कोहली साहब काँप उठे। कहने लगे—"तनिक धीरे से बात करो, दीवार के भी कान होते हैं।"

मैंने कहा—"क्यों धीरे से बात करूँ। तुम लोग एक तो अपराध करते हो और दूसरे हमारे जैसे सज्जन व्यक्तियों से सहायता चाहते हो। मैं तो अभी पुलिस को इस की सूचना दूंगा, अभी शोर मचा कर तुम्हें गिरफ़्तार करा दूंगा।"

कोहली साहब बहुत विकल हुए। दूसरे कमरे में ले जाते हुए उन्होंने मेरे पाँव पकड़ लिये और रोते हुए कहने लगे—"अब मेरी सहायता करो, फिर कभी कष्ट नहीं दूंगा।" यह कहते हुए उन्होंने एक हज़ार रुपये का चैक देते हुए कहा—"यह एक तुच्छ सी भेंट है इसे अपने पास रख लो और मेरी इज्ज़त बचा लो।'

मैंने चैक उनके हाथों में से छीन लिया और जेब में रखते हुए कहा—"तुम जैसे सज्जन बगुला भक्तों ने हम लोगों के नाक में दम कर रखा है।"

कोहली साहब कहने लगे—"लड़की का जो खच होगा वह मैं स्वयं दूंगा, इस की चिन्ता मत करना।"

"तो तुम लोग मुझे भिकारी समझते हो। जब आश्रय दिया है तो दो वक्त का भोजन भी नहीं दे सकूंगा, क्या ?" मैंने क्रुद्ध होकर कहा।

कोहली साहब मौन रहे। जब जाने लगे तो मैंने कहा—

"एक मिनिट के लिये मेरी बात सुन जाइये।" वह रुक गये!

मैंने गम्भीरता से कहा—"अब यह लड़की यहीं रहेगी, इस से दोबारा मिलने का प्रयत्न न कीजियेगा? वरना—"

यह कहते हुए मैंने अपना पिस्तौल उनकी तरफ़ तान कर कहा—"वरना आप इसका निशाना बन जाएंगे।"

कोहली साहब काँप उठे और मौन साधे नीचे उत्तर कर कार में बैठ गायब हो गये।

लड़की बहुत सहमी हुई थी। मैंने उसे अपने कमरे में बुलाया और उसकी राम कहानी सुनने लगा। उसने बताया कि वह गोजरखाँ की रहने वाली है। कोहली साहब की रिश्तेदार है। कोहली साहब प्रायः उनके घर जाते और रुपये पैसे से उसके मां बाप की सहायता करते थे। इसी सम्बन्ध से उसे भी रावलपिंडी में उनके घर आने-जाने का मौका मिला और कोहली साहब ने उसे सब्ज़बाग़ दिखा कर फाँस लिया। पहले तो विवाह करने का वायदा किया था, परन्तु जब उनकी पत्नी ने डाँट डपट दिखाई तो विवाह का इरादा छोड़ दिया। अब वह उनकी करतूतों से एक बच्चे की मां बनने वाली है। कोहली साहब के पास आई थी कि वह उसे आश्रय देंगे परन्तु आश्रय देने की बजाए उन्होंने उल्टा डाँप डपट की और तंग आए तो यहाँ ले आये। अब वह नहीं जानती कि उसका अन्त क्या होगा?

मैंने उसे साँत्वना दी और कहा—"वह निश्चिन्त मेरे पास रहे, उसे जीवन भर कोई कष्ट नहीं होगा।"

मैं भी तो अकेला ही था। मैंने निश्चय कर लिया कि उसे पत्नी बना कर रखूंगा।

उसका नाम था सुमित्रा और वह अत्यन्त हंस मुख तथा

सीधे स्वभाव की लड़की थी। मैंने उसके लिए तुरन्त घर में सब प्रबन्ध कर दिया। कुछ दिनों तक तो वह उदास रही और प्रायः कोहली साहब तथा अपने मां बाप को याद करके आँसू बहाने लगती, परन्तु बाद में मुझ से हिल-मिल गई। मुझे उससे बहुत अधिक प्रेम हो गया था।

एक दिन जेलर साहब आये। कहने लगे—"चौधरी व्यापार बढ़ाने का कोई ढंग करो, तुम तो इतने व्यापार पर ही सन्तुष्ट हो गये।"

उनका मतलब यह था कि रावलपिंडी के बाद दूसरे शहरों का रुख भी किया जाए और अपने कारोबार को कुछ चमकाया जाए।

उनकी सलाह मुझे पसन्द न थी परन्तु वातावरण का प्रभाव पड़े बग़ैर न रहा और आखिर उनका अनुमोदन करना ही पड़ा।

उन्होंने बताया कि नौरंग सराए से कुछ लड़कियाँ मिलती हैं। दो तीन हज़ार रुपये खर्च करने पड़ेंगे। तीन चार और लड़कियाँ मिल जाएं और फिर उन्हें लाहौर या अमृतसर में बेच दिया जाए।

और तीन चार दिन बाद वह ६ अच्छी सुन्दर लड़कियाँ ले आए। ये लड़कियाँ तीन चार दिन मकान पर रहीं। जेलर साहब की सलाह से मैंने इन में से दो को अपने पास रख लिया और कृष्णा जमीला तथा चार दूसरी लड़कियों को लेकर लाहौर रवाना हो गया।

लाहौर दिल फैंक नौजवानों की बस्ती है। वहाँ पहुँचा और कमर्शियल बिल्डिंग के एक कमरे में जाकर ठहरा। जेलर साहब

ने अपना एक आदमी साथ भेज दिया था वह शाम को ही दो आदमियों को लेकर आ गया। उन्होंने बारह हज़ार रुपया मेरे सामने रख दिया और कहने लगे—"अबकी बार यही सेवा कर सकते हैं फिर मौका मिला तो आप की झोली भर देंगे।" यह कह कर उन्होंने मेरे पाँव छूए और कहने लगे—"हमें निराश न करना लाला! हम गरीब आदमी हैं बड़ी मुश्किल से यह रुपया इकट्ठा कर सके हैं।"

बारह हज़ार रुपये में सौदा बुरा नहीं था। मैंने रुपया ले लिया और वायदा किया कि थोड़ी देर के अन्दर ही लड़कियाँ उनके पास पहुँचा दी जाएंगी।

शायद कृष्णा के कानों में कुछ भनक पड़ गई थी इसलिये जब मैं उस से मिलने अन्दर गया तो वह रो पड़ी। कहने लगी—"तो क्या आप हमें किसी के हवाले करके यहाँ से चले जाएंगे?"

मैं काँप उठा। तब भी अपने आप पर काबू पाते हुए मैंने कहा—"यह शंका तुम्हारे हृदय में क्योंकर उत्पन्न हुई?"

वह कहने लगी—"आप उन गुंडों से जो बातें कर रहे थे।"

मैंने उसे टाल दिया और यह बहाना किया कि एक मकान का सौदा कर रहा हूँ ताकि रावलपिंडी की बजाए लाहौर में ही रहूँ।

"तो क्या सौदा हो गया है?" कृष्णा ने पूछा।

"अभी कुछ कच्चा-पक्का है परमात्मा ने चाहा तो कुछ न कुछ हो ही जाएगा।" मैंने गम्भीरता से उत्तर दिया और उसकी पीठ पर हाथ फेरते हुए कहा—"तुम किसी बात की चिन्ता मत करो, तुम्हें छोड़ कर कहीं नहीं जा सकता।"

कृष्णा मुझ से लिपट कर बच्चों की भाँति रोने लगी। मेरी आँखों से भी आँसू निकल आए किन्तु जीवन के जिस रास्ते पर कदम रख चुका था उस में मुझे अपने हृदय को पत्थर की तरह कठोर करना पड़ा।

लड़कियों को उस रात सिनेमा दिखाने का बहाना करके ले गया। सिनेमा देखने के बाद हम अपने नये साथी हुसैन और नैमत के मकान पर गये, वहीं सोये। सुबह होने से पहले मैं ख़ामोशी से निकल कर रेलवे स्टेशन पर पहुँचा और गाड़ी पर सवार होकर लौट आया।

कृष्णा जमीला और उन की सहेलियों का क्या हुआ? यह जानने की आवश्यकता ही अनुभव नहीं की।

जेलर साहब इस सौदे से बहुत प्रसन्न हुए। उन्हें अपना हिस्सा मिल गया और मुझे भी कारोबार का एक नया रास्ता दिखाई दिया।

अभी एक सप्ताह भी नहीं हुआ था कि सीता ने एक आवश्यक सन्देश देकर बुला भेजा। गया तो मुस्कुराते हुए कहने लगी—"सोने की चिड़िया हाथ आ सकती है।"

मैंने पूछा—"कैसे?" तो वह कहने लगी—"यह जो पड़ौस में जवान सी लड़की रहती है ना, वह मेरी सहेली बन गई है।"

मैंने कहा—"तो क्या हुआ, तुम्हारी सहेली है तो इस से मतलब?"

सीता खिल-खिला कर कहने लगी—"तुम तो कोरे बुद्धू हो बुद्धू, मेरा मतलब नहीं समझे।"

मेरे पूछने पर उसने बताया—"कि उसका विवाह हुए अभी

तीन महीने हुए हैं और पति ने उसे जबर्दस्ती मैके भेज दिया है। वह चाहता है कि उसके माता पिता उसे ६ हज़ार रुपया दें परन्तु माता पिता की इतनी सामर्थ्य नहीं। इस लिए सब परेशान हैं।"

मैंने कहा—"तो मैं क्या करूं। मैं तो किसी की रुपये पसे से सहायता नहीं कर सकता।"

सीता कहने लगी—"तुम्हें रुपये पैसे से सहायता के लिए किस मूर्ख ने कहा है ? मैं तो तुम्हारे लाभ की बात कहती हूँ।"

उसने बताया कि परमेश्वरी घर वालों के व्यवहार से बहुत दुखी है क्योंकि वो उसे ताने देते हैं और वह बेचारी विवश हो कर कहीं भी जाने के लिए तैयार है। मैंने उसे राज़ी कर लिया है। फिर एक क्षण मौन रहने के बाद उसने कहा—"तुम आज रात गाड़ी का प्रबन्ध करो, मैं उसे चुपचाप ले आऊंगी और फिर तुम जहाँ चाहो रख लेना।"

मुझे पहले तो यह युक्ति पसन्द नहीं आई क्योंकि इस से एक मासूम जान तबाह होती थी। परन्तु दूसरी ओर अपने व्यापार का खयाल था इसलिये मैंने स्वीकृति प्रकट की और फिर घर लौट आया।

शाम के झुटपुटे में सारी इस्कीम सफल हो गई। परमेश्वरी खामोशी से घर से निकली, सड़क पर पहुँची और हम दोनों गाड़ी में बैठ कर लाहौर के लिये रवाना हो गये।

फिर कमर्शियल बिल्डिंग के उसी कमरे में जाकर ठहरे। परमेश्वरी भयभीत अवश्य थी परन्तु जब उसने लाहौर की चका चौंध देखी और दिन भर मेरे साथ घूमी तो वह शीघ्र ही घुल मिल गई और उसने अपनी सारी कहानी कह सुनाई।

वह इस बात पर सहमत थी कि मैं उस से विवाह कर लं या किसी और भले घर में बिठा दूं।

मैंने कहा—"मैं तो उसे अपनी बेटी समझता हूँ इस लिये उस से विवाह नहीं कर सकता, हाँ उसे किसी भले घर में बिठा सकता हूँ।"

सन्देश पहुँचा तो दोनों साथी आ पहुँचे। परमेश्वरी को देखा तो उनके मुख प्रसन्नता से खिल उठे। उन्होंने कहा—"ढाई हज़ार रुपया अभी मिल सकता है।"

मैंने कहा—"इतनी कम रकम में तो मुझे यह सौदा स्वीकार नहीं।"

कुछ और बात चीत हुई और आखिरकार वह तीन हज़ार में राज़ी हो गये। मैंने परमेश्वरी को उसी तरह उस मकान में रखा और सिनेमा देखने का बहाना करके चुपके से रावलपिन्डी आ गया।

इस घटना का ज्ञान न तो जेलर साहब को हुआ और न ही हरी तथा दारोग़ा जी को। तीन हज़ार रुपये में से पाँच सौ रुपये का सामान मैंने सीता के लिये खरीदा और बाकी रुपये मैंने बैंक में जमा करा दिये।

पत्नी इस अनुपस्थिति से बहुत जली भुनी बैठी थी। मिलने गया तो कहने लगी—"यह रंग ढंग हमें अच्छे नहीं लगते। न जाने तुम कहाँ कहाँ गायब रहते हो।"

मैंने मुस्कुरा कर कहा—"गायब कहाँ रहता हूँ कारोबार ही कुछ ऐसा है कि दौरे पर बाहर जाना पड़ता है। यदि न जाऊं तो खाऊं कहाँ से।"

"तुम नहीं जानते कि मेरी कैसी हालत है। तुम्हारी अनु-

पस्थिति में यदि कोई तकलीफ़ हो जाए तो !" यह कह कर वह फूट-फूट कर रोने लगी।

बात सच्ची थी। उसकी चिन्ता के ही दिन थे। मैंने कहा—"तुम इसकी चिन्ता मत करो, अब मैं कुछ दिन के लिये कहीं नहीं जाऊंगा।"

इतना होने पर भी मुझे दूसरे दिन ही जाना पड़ा क्योंकि साहब ने हुक्म दिया था कि गूजरखाँ में एक कांग्रेसी को झूठे मुकदमे में फाँसने के लिए जाना है।

एक पत्र था जो उसे पहुँचाना था और पुलिस ने उसे प्राप्त करके गिरफ़्तार कर लेना है।

गूजरखाँ गया और तीसरे दिन वापस आया, तो यह सुन कर काँप उठा कि मेरी पत्नी गायब है।

—:०:—

: चार :

गिरफ्तारी और छुटकारा

मुझे तुरन्त शंका हुई कि हो न हो कोहली साहब की यह दुष्टता है। उन्हें उस लड़की से प्रेम था इसलिए मेरी अनुपस्थिति से उन्होंने फ़ायदा उठाकर वह उसे भगा कर ले गये होंगे।

उनके घर पहुँचा तो वह अलग परेशान हुए। चाय का कप उनके हाथ से गिर कर टूट गया। कहने लगे—"यदि यह बात वास्तव में सत्य है तो उनकी कुशल नहीं।"

मैंने कहा—"आप व्यर्थ में विकलता प्रकट कर रहे हैं परन्तु मेरा तो घर उजड़ रहा है। मैं कहीं का न रहूँगा।"

कोहली साहब सटपटा गये। कहने लगे—"तुम्हें क्या मालूम कि यदि वह लड़की पकड़ी गई या उसने आत्मघात कर लिया तो मुझे भी गिरफ़्तार कर लिया जाएगा क्योंकि तुम से पहले मैंने उसके जीवन में प्रवेश किया था। मैं ही उसे उसके मां बाप के घर से निकाल लाने का ज़िम्मेवार हूँ।

बात सत्य थी परन्तु मेरी परेशानी की कोई सीमा नहीं थी। कोहली साहब पर क्या बीतेगी ? मुझे इसका तनिक भी ध्यान नहीं था, मुझे तो अपनी परेशानी खाए जा रही थी। मैंने झंझला कर कहा—"तो अब क्या किया जाए, सुमित्रा का किसी

न किसी प्रकार पता लगाना ही चाहिये।"

कोहली साहब कहने लगे—"बात तो ठीक है परन्तु तुम्हारी जिन लोगों से मित्रता है यदि उनमें से ही किसी ने यह काम किया हो तो सुमित्रा किसी प्रकार भी वापस नहीं मिल सकती, बल्कि हम दोनों के लिए कोई न कोई विपत्ति खड़ी हो जाएगी।"

मैंने कोहली साहब को अपने साथ लिया और दारोग़ा जी के पास पहुँच गये। उन्हें सारी कहानी कह सुनाई। उन्होंने उसी समय तांगा लिया और मेरे घर पहुँच कर नौकरों से पूछना शुरू कर दिया।

हरी को बुलाने के लिए आदमी भेजा तो मालूम हुआ कि हरी कल रात से ही गायब है।

दारोग़ा जी कहते थे—हो न हो यह हरी की ही दुष्टता मालूम होती है उसका पता लगाना चाहिये।" हवलदार को बुलाया गया। उसने बताया कि हरी कल रात एक स्त्री को लिये ताँगे पर सवार देखा गया था।

नौरंग सराए से आई हुई लड़कियों का पता किया गया तो मालूम हुआ कि वह भी गायब थीं।

पूर्ण विश्वास हो गया कि हरी ने इन से मिल कर दुष्टता की है और वह तीनों को लेकर कहीं गायब हो गया है।

दारोगा जी ने क्रोध में आकर कहा—"हरी को गिरफ़्तार न किया तो मेरा नाम बदल देना। यह बदमाश अब हम पर भी हाथ साफ़ करने लग गया है। इसे वह दंड दूंगा कि नानी याद आ जाएगी" और फिर मुझे एक ओर ले जाते हुए दारोग़ा जी ने कहा—"अब तुम अकेले अकेले ही शिकार खेलने लग गये हो।"

मैंने कहा—"मेरे होश उड़ रहे हैं और आप को मज़ाक की सूझ रही है।"

दारोग़ा जी ने कहा—"तुम्हारे होश तो मैं ठिकाने लगा ऊंगा। इसका इलाज मेरे पास है। हरी हो या कोई और दूसरा मेरे फन्दे से बच नहीं सकता। किन्तु परमेश्वरी के मामले में जो कुछ किया है वह मुझे क्यों नहीं बताया।"

मैंने आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा—"कौन सी परमेश्वरी, कौन सा मामला ?"

"हम से मक्कारी करते हो।" दारोग़ा जी ने क्रोध में आकर कहा—"रावलपिन्डी से अचानक गायब होकर लाहौर चले गये, तीन हज़ार का सौदा कर लिया और हमें पूछा तक नहीं। अब पूछते हैं तो भोले बनते हो।"

मेरा मुख फीका पड़ गया। मैंने कहा—"वह तो समय ही नहीं मिला बताने का, वरना आप से कभी कोई बात छिपा कर भी रखी है ?"

"अब छिपाओ जितना जी चाहे।" दारोग़ा जी ने गम्भीरता से कहा—"रिपोर्ट दर्ज हो चुकी है, लड़की मिल चुकी है। हथ-कड़ी लगेगी तो सब कुछ मालूम हो जाएगा।"

हथकड़ी का नाम सुन कर मेरे पाँव तले से ज़मीन निकल गई।

और दारोग़ा जी कह रहे थे—"तुम अभी कच्चे खिलाड़ी हो, हम से पूछ लेते तो किसी को पता भी न लगता। अब तो गिरफ़्तार होने में दिनों की कसर है, आज या कल !"

मैंने बिगड़ते हुए कहा—"अब क्या किया जाए ?"

"करना क्या है गिरफ़्तार होगे, मुकदमा चलेगा, सज़ा

मिलेगी और क्या होगा ?"

"आपके होते हुए मेरा कोई कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता हज़ूर।" मैंने खिस्यानी हंसी हंसते हुए कहा।

दारोग़ा जी ने हाथ छुड़ा लिया और एक तरफ़ होकर उन्होंने आवाज़ दी—"हवलदार कहाँ है ?"

हवलदार ने सामने आकर सलाम किया और कहने लगा—"उपस्थित हूँ हज़ूर !"

इसे हथकड़ी लगा लो और हवालात में बन्द कर दो।"

मैं काँप उठा। जब हवलदार मेरी ओर बढ़ा तो मैंने खिस्यानी हंसी हंसते हुए कहा—"अब हंसी मज़ाक छोड़ो, व्यर्थ में परेशान मत करो। मैं पहले ही बहुत दुखी हूँ।"

परन्तु दारोग़ा साहब ने सुनी अनसुनी कर दी और यह कहते हुए कि यह कोतवाल साहब का हुक्म है। तीनों अपने कमरे की ओर चले गये।

हवलदार ने मुझे ठोकर लगाते हुए कहा—"हाथ आगे करो।"

मौन भाव से मेरे हाथ आगे बढ़े, हवलदार ने हथकड़ी लगाई और कहा—"चलो हवालात की ओर।"

कठपुतली की भाँति मैं उसके संकेत पर आगे बढ़ा। कोतवाली से निकल कर पैदल हवालात की ओर चलने लगा। लोगों ने देखा और इकट्ठे होकर जलूस बना कर चलने लगे। कोई कुछ कहता था कोई कुछ और मैं आँखें नीची किये हुए शर्म के मारे गड़ा जा रहा था।

न केवल हवालात में ही रखा गया बल्कि मार पीट भी हुई। मैंने दारोग़ा जी और साहब का हवाला दिया, उनसे एक बार

भेंट करने की विनती की परन्तु किसी ने कोई परवाह नहीं की सब ने अपमानित किया, सब ने गालियाँ दीं।

और उस रात जब किसी तनूर वाले का नौकर पीतल की टूटी हुई थाली में सुबह का बासी खाना लेकर आया तो मेरी आँखों से आँसू बह निकले। मैंने सोचा कि इस जीवन से अच्छा तो यही है कि मनुष्य मर जाए।

मियाँ हकीमुद्दीन की अदालत में मुकदमा चला। परमेश्वरी को फुसलाकर बहका कर ले जाने और बेचने तथा नौरंग सराए से दो लड़कियों को बहका कर लाने और उन पर बलात्कार करने के अपराध में तीन वर्ष सख्त कैद की सजा हुई। दारोगा, हवलदार, परमेश्वरी, हरी, मेरे नौकर, कोहली साहब और दूसरे कितने ही वो मनुष्य जिनकी मित्रता पर मुझे घमंड था मेरे विरुद्ध गवाहों के रूप में पेश हुए। मैंने दो वकील कर रखे थे। उन्हें कई हज़ार रुपये दिये परन्तु मेरी कोई दलील कामयाब नहीं हुई। पुलिस का केस बहुत दृढ़ था, सजा हो गई।

रावलपिन्डी से लाहौर जेल में भेज दिया गया। मुल्तान से कैम्बलपुर और इसके बाद मियांवाली।

फिर वही वातावरण। हरी जैसे साथी जीवन की बड़ी अनोखी कहानियां सुनाते। मैं उन्हें सुनता, असमंजस में पड़ा हुआ। जब अपने जीवन की पिछली घटनाओं की याद आती और सोचता कि मैं अपराधी तो अवश्य हूँ, मुझे सजा मिल गई परन्तु जिन्होंने मुझे गिरफ्तार कराया, जिन्होंने मुझे सजा दिलवाई वो भी तो मेरे साझी थे उन्हें क्यों नहीं सजा मिली, वह क्यों हाकिम बने फिरते हैं।

कैदियों में एक व्यक्ति था साधू! हिजरो से आया था। उसने

मालिक की लड़की के आभूषण चुरा लिए और एक वर्ष कैद की सजा भुगत रहा था। एक दिन कहने लगा—"छूट कर मालिक से बदला न लिया तो मेरा नाम साधू नहीं।"

मैंने कहा—"उस बेचारे का क्या दोष है। तुमने आभूषण चुराए और दंड मिल गया।"

"मैंने अपराध क्या किया है ? उस मनुष्य से ही तो मुझे यह अपराध करने की प्रेरणा मिली।"

मैंने पूछा—"क्योंकर।" वह कहने लगा—"वह व्यक्ति तम्बाकू का व्यापार करता था। तम्बाकू में मिट्टी मिलाने का काम मैं स्वयं करता था, मिट्टी मिला कर दुगना मुनाफ़ा वह कमाता था। परन्तु मुझे क्या देता ? यही दस रुपये महीना। इस से घर का गुज़ारा चल सकता है क्या ?"

फिर कुछ देर रुक कर उसने कहा—"कोई दिन भी ऐसा खाली नहीं जाता था कि जब वह मेरा अपमान न करता हो। उस दिन तन्खाह मांगी तो गाली देने लगा। दुखी होकर उत्तर दिया तो उसने नौकरी से अलग कर दिया—"जाओ दावा कर दो तन्खाह नहीं दूंगा, जो करना हो कर लो। मैं क्या करता तंग आकर उस की लड़की की एक बाली उतार ली। पकड़ा गया तो सब ने मिल कर पीटा और पुलिस के हवाले कर दिया और मुझे सजा हो गई। अब बताओ कि उससे बदला न लूं तो क्या करूं ?"

मैंने कहा—"बदला लेकर भी सजा भुगतोगे। फिर जेल आओगे, इस से क्या लाभ होगा।"

"तो और क्या करूं ?" उसने गम्भीरता से कहा—"छूट कर भी तो जागीर नहीं मिल जाएगी कि आराम से रहूँगा। फिर काम

की खोज करनी पड़ेगी, भूखों मरना पड़ेगा।"

मैंने कहा—"तो क्यों नहीं मुझ से मिल कर काम करते। तुम व्यापार करना जानते हो तो मेरे पास पैसा है मिल कर व्यापार करेंगे। अपराधों के जीवन से छुटकारा तो मिल जाएगा ?"

साधू मान गया परन्तु मेरी यह आशा पूर्ण न हुई क्योंकि वह मुझ से पहले छूट गया था और जब मैं छूटा तो बाहर निकलते ही मुझे पुलिस के एक सिपाही ने पकड़ लिया और थाने ले गया।

मेरी हैरानी शीघ्र ही दूर हो गई। मेरा नाम पुलिस की डायरी में लिखा गया, फ़ोटो खिंचवाई गई और कहा गया—"तुम्हारा नाम दस नम्बर के बदमाशों में लिखा हुआ है। शहर से बाहर जाओगे तो थाने में सूचना देकर। यदि नियम के विरुद्ध किया तो फिर गिरफ़्तार कर लिये जाओगे।"

मैंने पूछा—"मेरा अपराध !"

"तुम बुर्दा फ़रोश हो, जवान लड़कियों को खरीदने और बेचने वाले हो, जेब कतरों को आश्रय देते हो, जूवे बाज़ी करते हो और जेब कतरों के मुखिया। तुम्हें सारी उम्र क्षमा नहीं किया जा सकता।" हवलदार साहब ने ऐनक उतारने और चढ़ाने का अभिनय करते हुए कहा।

मैंने निश्चय किया था कि अब यह काम नहीं करूंगा, कोई दुकान खोल लूंगा और छोटा-मोटा व्यापार करूंगा। परन्तु खेद है कि मेरी इच्छा पूर्ण न हुई।

मैंने मनिहार की दुकान खोल ली, तीन-चार हज़ार रुपया लगा कर। अनुभव हीनता के कारण नुकसान हो गया तो बचा खुचा

रुपया भी लगा दिया।

मैं इस दशा में भी प्रसन्न रहता परन्तु खेद है किसी ने मुझे अपने निश्चय पर कायम न रहने दिया। शहर में चोरी की घटना होती या लड़की भगाने की, दंगा होता या मार-पीट, मुझे तुरन्त पुलिस में बुला लिया जाता। दो एक बार तो हवालात में डाल कर मार-पीट भी की गई।

रह रहा था कैम्बलपुर में, परिचय कुछ था नहीं। इस लिये क्या करता क्या न करता।

नये इन्स्पैक्टर साहब आये। पठान मालूम होते थे। आते ही उन्होंने मेरे जैसे व्यक्तियों को थाने में बुला कर डाँट-डपट आरम्भ कर दी। कहने लगे—"शहर में दुर्घटनाएं बढ़ती जा रही हैं। सब उत्तरदायित्व तुम लोगों पर है। शान्ति से रहो वरना ऐसी सज़ा दूंगा कि नानी याद आ जाएगी।"

मैंने विनती करते हुए कहा—"हज़ूर मैं तो इस वातावरण से अलग हो चुका हूँ। मेरा नाम तो व्यर्थ में गुंडों की सूची में लिख दिया गया है। मेरे विरुद्ध कोई रिपोर्ट नहीं, कोई शिकायत नहीं।"

"तुम्हारा नाम क्या है ?" उन्होंने गरजते हुए कहा।

"हज़ूर मुझे नानक कहते हैं।" मैंने सिर झुका कर कहा।

"नानक तुम बड़े बदमाश हो। मेरे आदमियों की सूचना है कि शहर की सम्पूर्ण दुर्घटनाओं के उत्तरदायी तुम हो।" उन्होंने उसी प्रकार गरजते हुए कहा।

और समीप ही खड़ा हुआ मुंशी इस का अनुमोदन कर रहा था।

बहुत दुखी होकर घर वापस आया। दूसरे दिन सुबह

अभी बिस्तर पर लेटा हुआ ही था कि किसी ने दरवाज़ा खट-खटाया। किवाड़ खोले तो मुंशी जी खड़े थे। अन्दर ले गया चाए से आवभगत की। कहने लगे—"साहब का एक काम करना है, कर दो तो बहुत लाभ होगा ?"

"आज्ञा दीजिये ! मैं क्या सेवा कर सकता हूँ ?"

उसने कहा—"बहुत रहस्य की बात है यदि कर सको तो शायद तुम्हारा नाम ही गुंडों की लिस्ट में से काट दिया जाए।"

मैंने फ़िर वही पूछा।

मुन्शी जी का मतलब था कि समीप के गाँव हट्टीवत्तां में जाऊँ। वहाँ एक जुलाहे की लड़की शरीफाँ बहुत सुन्दर है उसे किसी प्रकार ले आऊँ।

मैं काँप उठा। मैंने कहा—"मैं यह काम नहीं कर सकता ? मैं तो इस प्रकार के जीवन से तोबा कर चुका हूँ।"

"देख लो ! कर सकते हो तो लाभ होगा, नहीं तो जीवन इसी प्रकार संकट में बीतेगा।"

मैं सोच विचार में पड़ गया। उन्होंने अनेक प्रकार के लालच दिये और धमकियाँ भी। मैंने इस पर विचार करने का वचन दिया। जब मुंशी जी बाहर चले गये तो मैंने झुंझला कर अपना सिर पीट लिया। बहुत बुरी दशा थी। इधर अनुभव हीनता के कारण कारोबार फ़ेल हो रहा था और उधर आये दिन के बुलावे परेशान कर रहे थे। करूं तो करूं क्या ?"

साथ ही मुंशी जी के ये शब्द कानों में गूंज रहे थे—"कि देख लो ! कर सकते हो तो करो, लाभ होगा वरना जीवन इसी प्रकार संकट में बीतेगा ?"

सोच विचार की धारा बदल गई और अब मैं यह विचार करने लगा कि मुझे कुछ करना ही होगा। अपने जोहर दिखाने ही होंगे वरना इन विपत्तियों से छूटने का कोई रास्ता नहीं।

और उसी दोपहर को मैंने मुंशी जी को कह दिया कि मैं तैयार हूँ। उनके लिए किसी भी विपत्ति का सामना करना मेरे बाँए हाथ का खेल है।

उन्होंने कहा—"एक और बात भी है वह भी सोच लो।"

मैंने पूछा—"क्या ?"

उन्होंने कहा—"शरीफ़ाँ को अपने घर मैं रखना होगा और उसके खर्च भी बरदाश्त करने होंगे।"

मैंने कुछ सोचा और फिर उत्तर दिया—"ठीक है मुझे स्वीकार है।"

मेरे लिये साधारण सी बात थी। चुस्त पोशाक पहनी, जुलाहे को गिफ़्तारी की धमकी दी और इसी बहाने उसे और शरीफ़ाँ को शहर ले आया। जुलाहे को तो मार-पीट कर भगा दिया और शरीफ़ा को अपने घर में रख लिया।

जुलाहा बहुत रोया चिल्लाया, न जाने कहाँ-कहाँ दरख्वास्तें देता फिरा परन्तु किसी ने उसकी एक न सुनी।

रात को खान साहब जब मेरे घर पर आए तो दावत हुई। विस्की के दौर चले। मैं एक सेवक की भाँति उनकी खुशामद करता रहा। उन्होंने जी खोल कर प्रशंसा की। शरीफ़ाँ बहुत रोई चिल्लाई परन्तु बेबस थी, उसकी एक भी पेश न चली और मैं फिर कुछ दिनों बाद एक सज्जन नगर निवासी हो गया। मुझे थाने में बुला-बुला कर धमकाने का सिलसिला स्वयं ही बन्द हो गया।

शरीफ़ाँ एक बहुत ही भोली लड़की थी परन्तु मेरी चेष्टाओं ने उसे शोख और चंचल बना दिया था।

उसे मैंने ऐसे पाठ पढ़ा दिये थे कि उसकी सहायता से किसी भी लड़की को फुसला कर ले आना उसके लिये बाएं हाथ का काम हो गया था।

और फिर मनिहार क दुकान बन्द हो गई और वही कारोबार फिर चमकने लगा जो मैंने रावलपिंडी में आरम्भ किया था और जिसे समाप्त करने के लिये मैंने जेल में तोबा की थी।

थट्टा की एक परम सुन्दर लड़की आई। यह भी मुसलमान थी। नाम था शायद बरकते। मां बाप ने पैदा होने पर बरकत बीबी रखा होगा परन्तु बिगड़ते-बिगड़ते बरकते बन गई।

उसे लेकर लाहौर पहुँचा और उसी बिल्डिंग में ठहरा। खरीदारों को सन्देश भेजा। वह आए और फिर सौदे बाज़ी आरम्भ हो गई। बरकते तीन हज़ार रुपये में बिकी। उसने बहुत आँसू बहाए परन्तु मेरे हृदय पर कोई असर न हुआ।

उसे विदा किया तो एक दुबला पतला धोतीपोश पीछे रह गया। सबके चले जाने पर उसने कहा—"लाला! आपने तीन हज़ार रुपये लेकर ग़लती की! यह तो हीरा थी। पाँच हज़ार मिलने साधारण सी बात थी।"

मैंने कहा—"तो पहले क्यों नहीं कहा, कहते तो तुम्हारे हवाले कर देता।"

उसने एक ठंडी साँस ली। कहने लगा—"बाबू जी! अपनी तो जान पहचान ही आज हुई है। राम कसम! पहले मालूम होता तो अकेले आता और पाँच हज़ार नकद देता!"

"खैर फिर कोई मौका मिला तो तुम्हारी भी इच्छा पूरी हो

जाएगी।" मैंने मुस्कुराते हुए उत्तर दिया—"अपना तो यही कारोबार है कोई एक दिन का मामला थोड़ा ही है।"

उसने मुस्कुराते हुए कहा—"तो याद रखना सेवक को राम दयाल कहते हैं किला गुज्जर सिंह में ठहरा हुआ हूँ। यह जो सामने मोटे से फल बेचने वाले की दुकान है किसी समय भी इसे बुला कर सन्देश दे देना, उपस्थित हो जाऊँगा।" फिर उसने बताया कि लाहौर अच्छी मारकीट है और बम्बई में भी काफ़ी खरीदारी है। माल पास हो तो फिर सैंकड़ों खरीदार, यहाँ नहीं तो दूसरी जगह।" मैंने कहा—ठीक तो है किन्तु अनुभव की बात है हम तो अभी चेले हैं परन्तु तुम तो उस्ताद मालूम होते हो।"

उसने खिल-खिला कर हंसते हुए कहा—"उस्ताद कहाँ! वह निपुणता तो अभी प्राप्त नहीं हुई हाँ दस पन्द्रह वर्ष से यही पापड़ बेल रहा हूँ। कुछ दाल दलिया हो जाता है यही काफ़ी है।"

और दूसरे दिन जब मैं गाड़ी से वापस आया तो मैंने निश्चय कर लिया कि मैं अपने इस व्यापार को दूर तक फैलाऊँगा।

—:o:—

: पाँच :

बाप और बेटी

तीन हज़ार रुपया अपने पास था। मैंने डेढ़ हज़ार रुपये में एक छोटी सी कार खरीद ली और एक हज़ार रुपया खर्च करके एक होटल और रेस्टोरेन्ट खोल लिया। इस प्रकार मुलाकातों के द्वारा अफ़सरों और बड़े लोगों से अपना मेल-जोल बढ़ाना आरम्भ कर दिया और मैं अपना कारोबार फैलाने लगा।

होटल और रेस्टोरेन्ट के काम में मुझे एक साझी भी मिल गया। उसका नाम तो शरीफ़ था किन्तु उसका चरित्र मुझ से भिन्न नहीं था। शरीफ़ अपनी कला में निपुण था। उससे पहली भेंट हिजरो में हुई थी जहाँ मैं एक लड़की को खरीदने के लिये गया था। लड़की के मां बाप ग़रीब थे और किसी वर की खोज में थे।

मुझे एक परिचित ने पत्र दे दिया था कि मैं शरीफ़ की सहायता से उस लड़की को प्राप्त करूं। शरीफ़ ने जो इस्कीम तैयार की उसके अनुसार मैं उस का पिता बना और वह मेरा पुत्र—एक तीसरे व्यक्ति की मार्फ़त लड़की के पिता से भेंट हुई। उसे बताया गया कि शरीफ़ कैम्बल पुर में एक रेस्टोरेन्ट का मालिक है और किसी ग़रीब लड़की से विवाह करना चाहता है। मैंने

विवाह के सब खर्च सहन करने का वचन दिया और लड़की के पिता को नौकरी दिलाने का चकमा भी। इस प्रकार वह काबू में आ गया और विवाह हो गया। हम लड़की को लेकर कैम्बल पुर आ गये परन्तु यह लड़की एक बार जो आई तो वापस न जा सकी। पहले विचार किया कि उसे लाहौर में बेच दिया जाए परन्तु शरीफ़ इस बात से सहमत न हुआ। कहने लगा—"लाहौर में अधिक से अधिक दो हज़ार रुपये मिल जाएंगे परन्तु कैम्बलपुर में रह कर यही लड़की हज़ारों रुपये की स्थाई आमदनी कर सकती है।"

उसकी बात ठीक थी। शरीफ़ाँ ने उस लड़की को जिस का नाम सन्तो था, वह सब्ज़ बाग़ दिखाए कि कुछ दिनों के अन्दर-अन्दर वह शरीफ़ाँ के भी कान कतरने लग गई। आरम्भ में तो उसने बहुत विरोध किया परन्तु जब ग़रीब घर की लड़की को अच्छी खूराक, अच्छा रहन-सहन और अमीरों जैसे वस्त्र मिलने लगे और सवारी के लिए मोटर भी मिल गई तो उसके होश ठिकाने आ गये। वह आकाश में उड़ने लगी।

दुनिया दिखावे को सन्तो शरीफ़ की पत्नी थी और शरीफ़ाँ मेरी बहिन तथा एक बहुत बड़े सभ्य परिवार की लड़की। इस लिए उन सज्जन व्यक्तियों की कमी नहीं थी जो उनके लिए सब कुछ लुटा देने के लिए तैयार थे।

सन्तो तो इतनी समझदार हो गई थी कि उसने शहर के कई घरानों में तालमेल पैदा कर ली थी। उनकी लड़कियाँ भी होटल में आतीं और अच्छी खासी आमदनी पैदा करतीं। हमें भी कमीशन के रूप में हिस्सा मिल जाता था।

कारोबार का य, तरीका अपने ढंग का निराला था और मैंने शरीफ़ से ही इसे सीखा था। होटल में मुसाफ़िरों के लिए कुछ कमरे नियुक्त थे। गाहक आते तो इशारों-इशारों में बातें हो जातीं। शरीफ़ सौदा कर लेता और शरीफ़ाँ तथा सन्तो की मार्फ़त लड़कियाँ आतीं। वे मुसाफ़िरों के साथ उनकी पत्नियों की भाँति बैठ जातीं। इस प्रकार से हम पर कोई कानूनी ज़िम्मेदारी लागू नहीं होती थी। मुसाफ़िर प्रायः कुछ घंटों के लिए ठहरते और पच्चास साठ रुपये दे जाते। उसमें से एक तिहाई रकम हमें कमीशन के रूप में मिल जाती और बाकी लड़कियाँ स्वयं ले जातीं।

कैम्बलपुर यूं तो एक छोटा सा कस्बा है परन्तु आप को इस बात से आश्चर्य होगा कि हमारे होटल से सम्बन्ध रखने वाली लड़कियों की संख्या एक सौ से अधिक थी और उन के गाहकों में बड़े-बड़े अफ़सर, वकील, व्यापारी और ज़मीन्दार सम्मिलित थे। बहुत से व्यक्ति पेशावर, नौशेहरा, बन्नू और रावलपिंडी से भी मनोरंजन के लिए आते थे। पेशावर का एक राय बहादुर अपने एक मुसलमान दोस्त को लेकर प्रायः आया करता था परन्तु हमारे होटल में ठहरने की बजाए शहर के एक मकान में ठहरता था और मैं वहीं उसके लिए भोग विलास की सामग्री प्रस्तुत कर देता था।

पेशावर में एक काम के बारे में मुझे जाना पड़ा तो शहर के बाहर सिनेमा के समीप एक होटल में ठहरने का मौका मिला। जहाँ एक व्यक्ति अब्दुलजब्बार से भेंट हुई। बातों ही बातों में भेद खुल गया। उसने बताया कि पेशावर में भी लड़कियाँ मिल सकती हैं और अब्दुल जब्बार उन्हें रावलपिंडी से लेकर कलकत्ते

तक बेचने जाता है। लाहौर की हीरा मंडी में उसके दो ऐजेन्ट थे। देहली में भी कुछ ऐजेन्ट थे। यह उन ऐजेन्टों की सहायता से उन लड़कियों को बेच कर अपने दाम खरे किया करता था।

अब्दुल जब्बार शीघ्र ही घुल मिल गया। उसने एक लड़की जानो को पेश किया। जानो बहुत भोली थी। अब्दुल जब्बार ने बताया कि वह पब्बी की रहने वाली है। उसका पिता बचपन में ही मर गया था और उसकी मां को डेरा इस्माइलखाँ के एक खान ने रखेल के रूप में रखा हुआ था। जानो इस बात को पसन्द नहीं करती थी क्योंकि मां उसे विवश करती थी कि वह भी उस के पद चिन्हों पर चले।

अब्दुल जब्बार ने उसे अपनी बहिन की सहायता से सब्ज़ बाग़ दिखा कर फुसला लिया और पेशावर ले आया। जानो को अभी तक मालूम नहीं कि उसका भविष्य क्या होगा। जानो के लिए डेढ़ हज़ार में सौदा हुआ। अब्दुल जब्बार ने उसे बताया कि वह उसे मेरे हवाले कर रहा है ताकि मैं उसे कैम्बलपुर ले जाऊँ। अब्दुल जब्बार ने जानो से वायदा किया कि वह भी कुछ दिनों के अन्दर कैम्बलपुर पहुंचेगा और फिर उसे बेटी की भाँति अपने पास रख कर उसका विवाह करा देगा।

जानो अब्दुल जब्बार से विदा हुई तो उससे लिपट कर एक मासूम बच्चे की तरह रोने लगी। हमने बड़ी कठिनता से उसे समझाया और मैं उसे बुर्का पहना कर कैम्बलपुर ले आया।

जानो कुछ दिन घर में रही, मैंने उस से कुछ भी नहीं

कहा। अपनी समझ में मैं उससे कुछ कहना भी नहीं चाहता था क्योंकि मैं उसे अपनी बेटी कह चुका था। हाँ मैंने शरीफ़ को समझा दिया कि वह उसे होटल के लिए तैयार करे।

एक दिन शाम को घर वापस आया तो जानो मेरे कमरे में बैठी रो रही थी। मुझे देखते ही मुझ से लिपट कर सिसक-सिसक कर रोने लगी। मैंने उसे बहुत तसल्ली दी परन्तु उसका रोना बन्द ही न होता था। बड़ी कठिनता से उसे समझाया तो वह मेरे पाँव पर गिर पड़ी। कहने लगी—"ख़ुदा के लिए मुझे पेशावर पहुंचा दो, मैं वहाँ अब्दुल जब्बार के पास रहूँगी।"

मैंने पूछा—"तुम्हें यहाँ क्या कष्ट है?"

वह फिर रोने लगी। उसने बताया कि शरीफ़ उसे बहुत दुखी करता है। पिछले चार दिनों से उसे विवश कर रहा है कि वह उस होटल में अपना शरीर बेचे। उसने इन्कार किया तो उसे चारपाई से बाँध कर खूब मारा-पीटा गया। और इस पर भी नहीं मानी तो शरीफ़ाँ और सन्तो ने उसे पकड़ लिया और उनकी उपस्थिति में ही शरीफ़ ने उसका सर्वनाश कर दिया। यही नहीं बल्कि कल रात मेरी अनुपस्थिति में उसने जानो को विवश किया कि वह एक वकील की वासना तृप्ति की सामग्री बने।

जानो बहुत रो रही थी मुझे भी तरस आ गया। मैंने उसे गले से लगा लिया और तसल्ली दी कि अब उसे कोई कष्ट न होगा। उसे कोई दुखी नहीं करेगा।

नौकर के द्वारा मैंने शरीफ़ को अपने कमरे में बुलाया। उसे डाँट डपट की और बुरा-भला भी कहा।

कमरे से बाहर निकल कर मैंने कहा—"शरीफ़ भाई! जानो को मैं अपनी बेटी समझता हूँ इसे होटल के कारोबार से अलग

ही रखना चाहिये।"

शरीफ़ आश्चर्य से मेरी ओर देखने लगा—मैंने गम्भीरता पूर्वक कहा—"मैं जो कुछ कह रहा हूँ ठीक कह रहा हूँ। मैं इसका जीवन नष्ट करना नहीं चाहता।"

"परन्तु आपने तो स्वयं ही कहा था कि मैं इसे होटल के लित तैयार करूं।" शरीफ़ ने क्रोध भरे स्वर में कहा।

"ठीक है किन्तु मनुष्य कभी-कभी अपना विचार बदल भी लेता है। जानो का भोलापन देख कर मेरा विचार बदल गया है—मैं उसकी भावनाओं से खेलना नहीं चाहता। मेरी आत्मा मुझे लज्जित कर रही है।"

शरीफ़ एक क्षण के लिए गम्भीर हो गया। इसके बाद उसने कहा—"तो जैसे जानो को आप अपने लिये ही रखना चाहते हैं, उसमें मेरा कुछ भी हिस्सा नहीं।"

उसके इन शब्दों ने मेरे हृदय में आग लगा दी। मैंने ही आश्रय दिया और मुझे ही बदनाम करने लगा है।

शरीफ़ को भी क्रोध आ गया। उसने कहा—"नानक यह धृष्टता अच्छी नहीं। मुझे बदमाश कह कर तुम सज्जन नहीं बन सकते। सारी उम्र अपराध करने के बाद भी अपने आप को सज्जन कहते हुए तुम्हें शर्म नहीं आती ?"

बात बढ़ गई और हम दोनों उलझ पड़े। शरीफ़ वार करने वाला था कि मैंने उसे आगे बढ़कर दबोच लिया और मार पीट करने के बाद उसे होटल से बाहर निकाल दिया। शरीफ़ के कपड़े फट गये और उसके सिर से खून बहने लगा। वह होटल से बाहर निकल तो गया परन्तु जाते हुए यह धमकी दे गया कि वह इस

का बदला लेकर रहेगा।

शरीफ़ के जाने पर मुझे बहुत कष्ट उठाना पड़ा क्योंकि वह मेरे जीवन के सम्पूर्ण रहस्यों से परिचित था और किसी समय भी मुझे चौपट कर सकता था। इसलिए मुझे बहुत पछतावा हुआ, बहुत दुःख हुआ।

उधर जानो ने यह दशा देखी तो वह बहुत व्याकुल हुई। कहने लगी—"आप जिस प्रकार भी हो मुझे पेशावर पहुँचा दें ताकि आप पर भी कोई संकट न आए और न ही मुझ पर।"

मैं अभी तक इसी सोच विचार में उलझा हुआ था कि शरीफ़ाँ ने हाँफ़ते हुए आकर कहा—"शरीफ़ सन्तो को अपने साथ ले गया है।"

मैं काँप उठा। मैंने कहा—"और सन्तो ने इन्कार नहीं किया?"

शरीफ़ाँ ने कहा—"सन्तो तो उसके साथ जाने के लिये तैयार न थी परन्तु शरीफ़ उसे ज़बर्दस्ती अपने साथ ले गया है।"

मेरे लिये यह एक और सिर दर्दी थी। मैंने कहा—"यह सब कुछ जानो के कारण हुआ है यदि शरीफ़ से उलझ न पड़ता तो यह स्थिति कभी उत्पन्न न होती।

जानो खड़ी सुन रही थी। उसकी आँखों से आँसू बह रहे थे। शरीफ़ाँ के चले जाने के बाद उसने हाथ जोड़ते हुए कहा—"आप मुझे यहाँ से किसी दूसरे स्थान पर पहुँचा दें ताकि आप पर कोई विपत्ति न आए।"

बात ठीक लगी। मैंने शरीफ़ाँ के साथ जानो को शहर में ही

एक मकान पर पहुँचा दिया और स्वयं दारोग़ा जी से मिलने के लिए थाने चला गया।

दारोग़ा जी ने शरीफ़ से लगभग सब बातें सुन ली थीं। मेरी बातें सुनने के बाद उन्होंने गम्भीरता से कहा—"हम उस लड़की को देखना चाहते हैं। यदि वह इतनी ही भोली है तो हम शरीफ़ को गिरफ़्तार कर लेंगे।"

मुझे यह बात पसन्द नहीं थी। दारोग़ा जी की नीयत से मैं भली भाँति परिचित था इसलिए नहीं चाहता था कि जानो उनके सामने आए। अतः मैंने उनकी बात काटते हुए कहा—"आप सन्तो को मुझे वापस दिला दें, मैं शरीफ़ के विरुद्ध कोई कार्यवाही करना नहीं चाहता।"

"परन्तु जानो को हमारे सामने अवश्य पेश करना होगा। उसका बयान लिखने के बाद ही कोई कार्यवाही की जा सकती है।" दारोग़ा जी ने गम्भीरता से उत्तर दिया।

"परन्तु" मैंने डरते डरते आरम्भ किया।

"परन्तु-वरन्तु कुछ नहीं चलेगी। यह कानून है और इसका ध्यान रखना ही पड़ता है। यदि हम इस घटना को भुला दें तो कल कलाँ को हम पर कोई विपत्ति आ सकती है।"

टालना असम्भव हो गया और दारोगा जी ने आज्ञा दी कि शाम को जानो उनके सामने पेश कर दी जाए।

घर वापस आया तो बहुत चिन्तित था। सोच रहा था कि दारोग़ा जी की यह बात कोई नया रंग न ले आये, परन्तु कुछ निर्णय न कर सका। व्यर्थ में एक विपत्ति मोल ले ली थी अब उसका परिणाम सहन करना ही होगा।

शाम होने से पहले दारोग़ा जी ने सन्देश भेजा कि वह

स्वयं होटल पर आ रहे हैं और वहीं जानो का बयान लिखेंगे।

स्पष्ट है कि दारोग़ा जी के आवभगत का भी प्रबन्ध करना था। इसके लिए शरीफ़ाँ को सेवा के लिए नियुक्त कर दिया।

जानो का बयान बन्द कमरे में लिखा जाने लगा। कोई एक घंटा लग गया। दरवाज़ा खुला तो जानो बहुत सहमी हुई दिखाई देती थी। दारोग़ा जी ने मुस्कुराते हुए कहा—"जानो अपने घर जाने के लिए सहमत हो गई है हम इसे अपने नौकर के द्वारा इसके गाँव पहुँचा देंगे।"

मेरी दशा यह थी कि काटो तो शरीर में खून नहीं। मैंने कहा—"परन्तु मेरे डेढ़ हज़ार रुपये ?"

"बेशर्म—बदतमीज़—डेढ़ हज़ार रुपये के लिये रो रहा है, एक स्त्री के जीवन का कोई खयाल नहीं।"

मैंने उन्हें एक ओर ले जाकर उन से अनुनय विनय की। मैंने उन्हें बताया कि इस बात से मुझे बहुत अधिक हानि होगी। शरीफ़ पहले ही अलग हो गया है, सन्तो भी छिन गई और अब जानो भी छीनी जा रही है। इस दशा में अब मेरा क्या हाल होगा ?"

"यह हमारे बस की बात नहीं, बुरे कामों का बुरा ही परिणाम होता है।" दारोग़ा जी ने कहा।

मैं कुछ और कहना चाहता था कि दारोग़ा जी ने झिड़क कर कहा—"ग़नीमत है कि तुम बच गये हो, वरना जेल की हवा खानी पड़ेगी।"

जेल के नाम से मैं काँप उठा। दारोग़ा जी होटल की सीढ़ियों से नीचे उतरने लगे। बाज़ार में कदम रखा तो फिर अपने

पास बुला लिया और कहने लगे—"तुम मूर्ख हो। शरीफ़ के साथ बिगाड़ पैदा करना नहीं चाहिए था। जानो अब भी तुम्हारे हवाले हो सकती है परन्तु शर्त यह है कि।"

मैंने हाथ जोड़ कर कहा—"मुझे क्या करना चाहिये ?"

उन्होंने कहा—"शरीफ़ से समझौता कर लो और जानो के सम्बन्ध में जो कुछ वह कहे मान लो।"

अपना कारोबार चौपट होते देख कर मैंने सहमती प्रकट की। दारोग़ा साहब चले गये और शरीफ़ सन्तो को लेकर मुस्कुराता हुआ वापस आ गया।

उस रात मैं बहुत रोया, बहुत विकल हुआ। सारी रात नींद नहीं आई। यही सोचता कि इस काम में गुलामी और अपमान के अतिरिक्त कुछ नहीं परन्तु अब इस से हटना भी सम्भव नहीं। एक ओर खाई है तो दूसरी ओर कूंवा।

जानो ने जब फिर शरीफ़ को होटल में देखा तो बहुत व्याकुल हुई। मुझ से पूछने लगी तो मैं भी शर्म के मारे कुछ न बता सका। इतना ही कहा कि उसने क्षमा मांगली है।

दूसरे दिन बन्नू जाना था। वापस आया तो जानो फिर रो रही थी। समझ गया कि शरीफ़ ने फिर कोई हरकत की है। बन्द कमरे में जानो को बुला कर पूछा तो उसने कहा कि कल दारोग़ा जी होटल में आए थे और उसकी इज्ज़त पर हमला करके चले गये। और शरीफ़ तो फिर दुष्ट सिद्ध हुआ। जानो ने बहुत विरोध किया परन्तु उसकी एक न चली। जानो ने रोते हुए कहा—"तो क्या आप मेरी कोई सहायता नहीं कर सकते ? आप भी शरीफ़ की भाँति निर्दय हो गये हैं।"

मेरी आँखों में आँसू आ गये। मैंने उसकी पीठ पर हाथ फेरते हुए कहा—"हम दोनों का भाग्य ही खराब है। न तो तुम्हारे बस की बात है, न ही मैं कुछ कर सकता हूँ क्योंकि शरीफ़ की पीठ पर दारोग़ा जी हैं। यदि इन्कार करूं तो हम दोनों गिरफ़्तार कर लिये जाएंगे।"

"तो आप मुझे पेशावर क्यों नहीं पहुंचा देते ?"

"वहाँ जाने ही कौन देगा ? प्रयत्न किया तो गिरफ़्तार कर लिये जाएंगे। यदि किसी प्रकार वहाँ पहुँच भी जाएं तो अब्दुल जब्बार कौन सा सज्जन व्यक्ति है।"

जानो आश्चर्य से मेरा मुंह तकने लगी।

मैंने कहा—"तुम्हें क्या मालूम कि उसने डेढ़ हज़ार रुपये में तुम्हें मेरे हाथ बेच रखा है।"

"डेढ़ हज़ार रुपये में ?" उसने आश्चर्य से मेरे शब्दों को दोहरा कर पूछा।

"हाँ ! इसी लिये तो मैं पेशावर गया था।"

जानो मौन हो गई। एक क्षण के बाद उसने पूछा—"तो क्या हमारे देश में लड़कियाँ भी बेची जाती हैं।"

कितना भोलापन और सादगी थी इन शब्दों में। मेरी आँखों से आँसू निकल आये परन्तु मैंने अपने आप पर काबू पाते हुए कहा—"अब जो कुछ हो गया है उसकी चिन्ता मत करो और शरीफ़ जिस प्रकार कहे उसी तरह करो।"

"तो आप भी अपने वायदे से मुकर गये, आप भी शरीफ़ के साथी बन गये हैं।" जानो ने रोते हुए कहा।

मैंने कहा—"तुम्हारा कहना ठीक है परन्तु मेरे बस की बात

नहीं, मैं विवश हूँ जानो !"

वह मौन हो गई। इसके बाद उसने मेरे पाँव पकड़ते हुए कहा—"नहीं, यह नहीं होगा। मैं ऐसा नहीं होने दूंगी। आप ऐसा नहीं करेंगे। आपने तो मुझे अपनी बेटी बनाने का वचन दिया था ?"

मैंने उसे अपने गले से लगा कर तसल्ली देनी चाही परन्तु मेरे अपवित्र हाथ काँप रहे थे, मेरे पाँव डगमगा रहे थे। मैंने उसे भुजाओं से पकड़ा और छोड़ दिया। जानो धड़ाम से गिर पड़ी और फूट-फूट कर रोने लगी।

हृदय और मस्तिष्क में एक अजीब द्वन्द मचा हुआ था। मैं एक ऐसे दोराहे पर खड़ा हुआ था जिसके एक ओर खाई थी तो दूसरी ओर कूंवा।

जानो को रोता छोड़ कर मैं कमरे से बाहर निकल आया। शरीफ़ ने देखा तो वह मुस्कुरा दिया। कहने लगा—"मैं अभी ठीक करता हूँ। इसकी तो मजाल ही क्या है बड़ी-बड़ी ज़िद्दी लड़कियों को होश में ला चुका हूँ।"

मैं चाहता था कि शरीफ़ को कहूँ कि जानो उन लड़कियों में से नहीं, वह कभी नहीं मानेगी। किन्तु साहस नहीं था कि फिर कुछ दिनों पहले का ड्रामा करूँ और हवालात की हवा खाऊँ। भोजन के कमरे में गया और आराम कुर्सी पर बैठ गया।

जानो के कमरे से चीखने की आवाज़ें आ रही थीं। शरफ़ी उसे बहुत निर्दयता से पीट रहा था। व्याकुल तो था ही, तंग आकर होटल से बाहर निकल गया और स्टेशन की ओर चल दिया।

महीनों बाद आज फिर जीवन की एक नई उलझन में उलझा

हुआ था। अनेक प्रकार के विचार आते थे। कभी सोचता था कि रेल की पटरी पर लेट कर आत्महत्या कर लूं। कभी विष खाकर जीवन को समाप्त करने की युक्ति मस्तिष्क में आती, परन्तु साहस नहीं था। हृदय और मस्तिष्क दोनों बेकाबू हो चुके थे। मैं कुछ भी निश्चय न कर सका कि क्या करूँ।

वापस आया तो शरीर थक कर चूर हो चुका था। बिस्तर पर लेटा तो नींद आ गई।

दोपहर को कमरे का दरवाज़ा किसी ने खटखटाया। खोला तो शरीफ़ और जानो सामने खड़े थे। शरीफ़ मुस्कुरा रहा था और जानो ने फ़ैशनेबल लड़की के कपड़े पहन रखे थे। उसके कपड़े और सिर के बालों की सुगन्ध सारे कमरे में फैल रही थी।

शरीफ़ ने उसके गाल पर हल्की सी चपत लगाते हुए कहा—"जानो राज़ी हो गई है, अब तनिक भी विरोध उत्पन्न नहीं करेगी।"

मैंने आश्चर्य से पहले जानो और फिर शरीफ की ओर देखा। शरीफ़ मुस्कुरा रहा था और जानो चिन्तित दिखाई देती थी। परन्तु इस बार मुझे देखकर वह रोई नहीं, उसकी आँखों में आँसू नहीं आये।

मैंने कहा—"मुझे यह ड्रामा दिखाने की आवश्यकता नहीं, तुम लोग जो चाहो सो करो। किन्तु मुझ से पूछने या कुछ कहने से कोई लाभ नहीं।"

शरीफ़ को हंसी आई। उसने खिलखिलाकर हंसते हुए कहा—"तुम कुछ भी कहो परन्तु तुम्हारी शागिर्दी से इन्कार

नहीं कर सकता। तुम्हारे निर्देश और आज्ञा के बिना कोई काम करना भी पाप समझता हूँ।"

और जानो को बाहर भेजते हुए उसने कहा—"रुष्ट न हुआ करो लाला! अपने कारोबार में जो व्यक्ति भावुकता में आकर फिसल जाता है वह कभी सफल नहीं हो सकता, उसका जीवन नष्ट हो जाता है।"

बात ठीक थी। मैंने जीवन के जिस पथ पर पाँव रखा था उसमें पीछे देखना मूर्खता ही थी। शरीफ़ व्यापारिक तौर पर एक दयानतदार और वफ़ादार साथी की भाँति सलाह दे रहा था।

मुझे मौन देखकर उसने कहा—"तो आज्ञा मिलती है या नहीं?"

मुझे भी हंसी आ गई। मैंने कहा—"जानो सहमत हो गई है तो अपना कारोबार चमकाओ। अब मैं कोई विरोध नहीं करूंगा। तुम्हारे रास्ते में कोई बाधा उपस्थित नहीं करूंगा।"

"और तुम....."

"मेरा क्या है?" मैंने गम्भीरता से कहा—"मैंने एक बार भूल की है भविष्य में नहीं करूंगा।"

"शाबाश" शरीफ़ ने मेरी पीठ पर ज़ोर से हाथ मारते हुए कहा—"यदि इसी प्रकार दृढ़ प्रतिज्ञ रहे और बाप बेटी के झगड़े में न फंसे तो सफलता तुम्हारे पाँव चूमेगी।"

फिर शरीफ़ाँ को बुलाकर उसने विस्की के चार पैग तैयार कराए। जानो को बाहर से बुलाया और संकेत किया। जानो ने काँपते हुए हाथों से पैग उठाया और धीरे-धीरे पी गई।

शरीफ़ाँ और शरीफ़ खिलखिला कर हंस पड़े—"कुछ दिनों

के अन्दर-अन्दर सब कुछ सीख न गई तो मेरा नाम बदल देना।"

मैंने मुस्कुरा कर कहा—"तुम्हारा चरित्र तो पहले ही तुम्हारा नाम बदल चुका है।"

शरीफ़ाँ झेंप गई और फिर तीनों कमरे से बाहर निकल गये।

जानो को एक रात में इस प्रकार बदले हुए देख कर मुझे आश्चर्य हुआ। वास्तव में शरीफ़ जादूगर था। न जाने उसने जानो को क्या सब्ज़ बाग दिखाए थे कि वह अपनी सम्पूर्ण पूर्व की घटनाओं को भुला कर जीवन के नये पथ पर चलने लग गई थी।

उस रात जानो बहुत रात गये वापस आई। मैंने देखा वह नशे में झूम रही थी। उसके पाँव डगमगा रहे थे। उस से बात करने लगा तो वह बहकी बहकी बातें करने लगी।

सुबह सवेरे उठने के बाद जानो के कमरे में गया तो मैंने उसके साथ बैठ कर चाय पी। जानो का रंग बदला हुआ था। मुझे देखकर वह बिल्कुल नहीं लजाई। उसने दुपट्टा ओढ़ने की चेष्टा नहीं की बल्कि निस्संकोच भाव से बातें करने लगी।

चाय पीते-पीते उसने पूछा—"आप शरीफ़ाँ से प्रेम करते हैं परन्तु हम से घृणा। इसका क्या कारण है?"

मैं चकित ही नहीं बल्कि लज्जित भी हुआ। उसे किसी समय अपनी बेटी कहा था। उसके मुख से यह बातें सुनने की स्वप्न में भी आशा नहीं थी।

परन्तु जानो निरन्तर कहे जा रही थी—"मैं शरीफ़ाँ से कम सुन्दर हूँ क्या? वह मुझ से अधिक रूपवती लगती है क्या?"

मैंने क्रोध में आकर कहा—"यह तुम क्या कह रही हो जानो ? अपने बाप के सामने यह बातें करते तुम्हें लाज नहीं आती क्या ?"

"बाप" वह खिलखिला कर हंस पड़ी—"तुम मुझे अपनी बेटी समझते हो क्या ?"

"और तुमने क्या समझ रखा है ?" मैंने उसी तरह क्रुद्ध स्वर में कहा—"मुझे तुम से ऐसी बातों की बिल्कुल आशा नहीं थी।"

जानो ने चाए का प्याला वहीं छोड़ दिया और अपनी कमीज़ का गला फाड़ कर अर्धनग्न खड़ी हो गई। मैं क्रोधावेश से सटपटा कर उठने लगा तो उसने अपनी छातियों पर बैंतों की मार के निशान दिखाते हुए कहा—"इन्हें देख कर भी मुझे अपनी बेटी कहते हो ? क्या बेटियों से यही व्यवहार किया जाता है ?"

यह कहकर उसी प्रकार अर्धनग्न अवस्था में किवाड़ बन्द करके वह खड़ी हो गई और चिल्ला-चिल्ला कर कहने लगी—"मेरा जीवन तुमने ही तो नष्ट किया है। मुझे इस दशा को भी तुमने ही पहुँचाया है। बाप और बेटी के पवित्र शब्दों का प्रयोग करते हुए शर्म नहीं आती तुम्हें ?"

कोई उत्तर बन नहीं पड़ा। उसकी बातों ने मेरे क्रोध का पारा तेज़ कर दिया। मैंने उसे ज़ोर से थप्पड़ मारते हुए कहा—"चान्डाल कहीं की, मेरे सामने भी इतनी निर्लज्जता से बातें कर रही है।"

वह पृथ्वी पर गिर पड़ी। उसने ज़ोर-ज़ोर से अपना सिर पटखना आरम्भ कर दिया और बच्चों की तरह फूट-फूट कर

रोने लगी। वह कह रही थी—"मुझे कतल कर दो—बोटी-बोटी कर दोमैं। किसी प्रकार के दयाभाव की इच्छुक नहीं। मुझ पर बिल्कुल दया मत करो।"

मैं यह कहते हुए बाहर निकल गया कि "तुम मर जाओ या आत्मघात कर लो, मेरा तुम से कोई सम्बन्ध नहीं।"

—:०:—

: छः :

लाहौर में

अपने कमरे में आकर मैंने दरवाज़ा बन्द कर लिया और जानो के विषय में सम्पूर्ण घटनाओं पर विचार करने लगा। मैं चकित था कि यह लड़की एक अजीब पहेली है। कुछ दिन पहले कितनी भोली थी, कितनी सज्जन थी, बात करते हुए शर्माती थी। उसने कितना विरोध किया। परन्तु इसके बाद सहसा इतनी निर्लज्ज हो गई और अब एक दम कितनी मुँहफट हो गई है।

उस दिन मैंने उस से कोई बात चीत नहीं की। मेरे सामने से गई तो मैंने एक ओर को मुँह फेर लिया। उसे देखना भी सहन न किया।

रात को वापस आया तो एक शोर मचा हुआ था। शरीफ़ सब से उलझ रहा था। मुझे देखते ही उसने कहा—"गज़ब हो गया।"

मैंने पूछा—"क्या हुआ?"

उसने कहा—"जानो भाग गई। दोपहर से उसका कोई पता नहीं चलता।"

मैंने चिन्तित होकर पूछा—"कैसे भागी, कब भागी? किसी ने उसे रोका तक नहीं क्या? पुलिस में रिपोर्ट लिखवाई है या

नहीं ?"

"ऐसे बुद्धू हैं यह लोग कि इन्हें कुछ पता ही नहीं। वह अचानक कमरे से निकली और गायब हो गई। न किसी ने उसे देखा न टोका।"

मैंने कहा—"तो अब क्या बनेगा ?"

"किसी के साथ भाग गई होगी ?" शरीफ़ाँ ने कहा।

"किन्तु उसका तो कोई परिचित ही नहीं।" मैंने कहा।

शरीफ़ मुझ से सहमत था। मेरी तरह वह भी इस पहेली पर चकित था। उसे भी विश्वास नहीं होता था कि जानो का कोई परिचित उसे भगा ले गया होगा ?"

मैंने कहा—"हमें थाने में रिपोर्ट लिखवा देनी चाहिये।"

शरीफ़ मौन था। एक क्षण के बाद उसने मुझे एक ओर ले जाते हुए कहा—"रिपोर्ट लिखवाने से कोई लाभ नहीं होगा। यदि उसने आत्मघात कर लिया हो तो हम सब गिरफ़्तार हो जाएंगे।"

"क्यों ?" मैंने पूछा—"हमें क्यों गिरफ़्तार करेंगे ?"

"इसलिए कि वह हमारी सम्बन्धी नहीं, उस से हमारा कोई सम्बन्ध नहीं। यदि पुलिस ने खोज आरम्भ की और उसके पहले जीवन का पता लग गया तो हम अपना पीछा नहीं छुड़ा सकेंगे।"

शरीफ़ ठीक कह रहा था। जानो के अचानक गुम हो जाने पर मुझे बहुत अधिक खेद हुआ। बहुत बड़ा आघात पहुँचा परन्तु अब क्या किया जा सकता है मौन रहने के सिवाय कोई चारा ही न था।

उस रात हम दोनों बहुत चिन्तित रहे। शरीफ़ के कहने पर

हम ने होटल के रजिस्टर में लिख लिया कि हम दो दिन से पेशावर में हैं। शरीफ़ ने एक आदमी भेज कर पेशावर में अब्दुल जब्बार के होटल में भी अपने निवास की बात लिखा दी थी।

तीसरे या चौथे दिन मालूम हुआ कि जानो ने कूंवे में छलाँग लगा कर आत्महत्या कर ली है। पुलिस में रिपोर्ट लिखवाई ही नहीं थी इसलिए मामला रफ़ा दफ़ा हो गया। पुलिस ने लाश को लावारिश बताकर पोस्टमार्टम के बाद दफन कर दिया था।

जानो की आत्महत्या मेरे लिए एक बहुत बड़ा आघात थी। शरीफ़ को भी खेद था परन्तु मेरी तो आत्मा भी मुझे धिक्कार रही थी। क्योंकि उसके आत्मघात का उत्तरदायी मैं था। उसका खून मेरी गर्दन पर था। क्योंकि यदि उस दिन मैं उस से प्रेम का बर्ताव करता और उसकी दिलजोई करता तो वह कभी भी निराश होकर आत्महत्या करने पर विवश न होती।

उस दिन मैं बहुत रोया। मेरा हृदयभग्न हो चुका था। सरदाराँ की मृत्यु के बाद मेरे लिये यह दूसरा भारी आघात था। आज जानो और सरदाराँ इस संसार में विद्यमान नहीं किन्तु उनकी याद मेरे मस्तिष्क में अब तक मौजूद है। रात्रि के एकान्त में जब बीती हुई घटनाएं चलचित्र की भाँति याद आने लगती हैं तो मेरी आँखों से आँसू बहने लगते हैं। मेरा मस्तिष्क विकृत हो जाता है। मेरी आत्मा धिक्कारती है और मैं सोचता हूँ कि मैं दोनों के खून का उत्तरदायी हूँ और परमात्मा मुझे कभी क्षमा नहीं करेगा।

उस रोज़ मैंने खाना नहीं खाया। दूसरे दिन भी जब उदासी दूर न हुई और मैंने किसी गाहक से बात चीत नहीं की

तो शरीफ़ ने सिग्रेट के कश लगाते हुए कमरे में प्रवेश किया। मेरी पीठ पर ज़ोर से हाथ मारते हुए उसने कहा—"अब कुछ काम भी करोगे या नहीं। इस प्रकार बात-बात पर उदास हो जाने से तो हम सबको किसी न किसी दिन भूखों मरना पड़ेगा।"

मैंने कहा—"शरीफ़ तुम अनुभव नहीं कर सकते कि मैं कितना चिन्तित हूँ।"

"गिरफ़्तारी के भय से ?"

"नहीं इसकी मुझे तनिक भी आशंका नहीं।" मैंने कहा—"मुझे मेरी आत्मा धिक्कार रही है।"

"तो उसे मैं ठीक कराए देता हूँ।" शरीफ़ ने मुस्कुराते हुए कहा—"विस्की के दो पैग ही पर्याप्त हैं।"

मैंने झुंझला कर कहा—"मुझे विस्की की आवश्यकता नहीं शरीफ़! मैं रोगी नहीं।"

"तो फिर शरीफ़ाँ को ले आऊँ, वह इलाज कर देगी।" शरीफ़ ने ठहाका लगाते हुए कहा—"तुमने तो हद ही कर दी है नानक! इतना लम्बा सोग कौन करता है और फिर हमें तो अपना हृदय वज्र के समान कठोर बनाना चाहिये।"

मैंने एक ठंडी उसाँस ली। कहना चाहता था कि हम कितने ही बुरे सही परन्तु हमें जल्लाद और कातिल बनना नहीं चाहिये। परन्तु मौन हो गया। मैंने कहा—"लाओ विस्की का पैग।"

शरीफ़ ने आलमारी से बोतल निकाली। विस्की के तीन पैग तैयार किये। तीसरे पैग को देखकर मैंने आश्चर्य से पूछा—"यह तीसरा पैग किस के लिये है ?"

शरीफ़ ने मुस्कुराकर कहा—"यह भी मालूम हो जाएगा।"

"शरीफ़ाँ को ला रहे हो क्या ?" मैंने आश्चर्य प्रकट करते

हुए पूछा ।

"उसे लाकर क्या करना है साहब !" शरीफ़ ने मुस्कुराते हुए कहा—"वह तो कबाड़खाने का माल हो चुकी है ।"

मैं आश्चर्य से उसके मुख की ओर देख रहा था और शरीफ़ कहे जा रहा था—"अभी मालूम हो जाएगा । काश्मीर का माल है सेब की तरह । देखोगे तो सालम ही निगल जाने को तबियत चाहेगी ।"

बिस्तर से तेज़ी से उठते हुए मैंने कहा—"कहाँ है वह ? कहाँ से लाए हो ?"

शरीफ़ मुस्कुराता हुआ कमरे से बाहर निकल आया और दूसरे ही क्षण एक सुन्दरी को जो लजाती हुई दुल्हन की भाँति दिखाई देती थी, ले आया ।

मुझ से परिचय कराते हुए उसने कहा—"यह मुज़फ़्फ़राबाद से आई हैं । जेबुलनिसा इनका नाम है ।"

मैं उसे देखता ही रह गया । वह सौंदर्य की प्रतिमा मालूम होती थी । धानी साड़ी में सुसज्जित ऐसी दिखाई देती थी जैसे आकाश से इन्द्र के अखाड़े की कोई अप्सरा उतर आई हो ।

उसे देखने में मैं कुछ इस तरह खो गया कि उस से परिचय प्राप्त करना भी भूल गया ।

सहसा शरीफ़ ने कहा—"ये हैं हमारे मालिक लाला नानक चन्द, शहर के प्रसिद्ध रईस । बड़े-बड़े अफ़सर तक इनके पाँवों की धूलि हैं । बड़े सज्जन मनुष्य हैं ।"

"और इसी लिये लालपरी के प्रेमी हैं ।" सुन्दरी ने खिल-खिला कर हंसते हुए वाक्य की पूर्ति की और यह कहते हुए कि "क्षमा कीजियेगा, दासी ने कोई धृष्टता तो नहीं की ।" वह स्वयं

ही कुर्सी पर बैठ गई।

उसका निस्संकोच भाव देखकर मैं तो चकित रह गया। मेरी ओर से शरीफ़ ने स्वयं ही यह कहते हुए उत्तर दे दिया—"लाला जी ऐसी धृष्टता का सम्मान करते हैं।"

"बहुत खूब!" जेबुलनिसा ने विस्की का पैग उठाते हुए कहा—"तब तो मैंने कोई गलती नहीं की।"

"आप जिसे गलती समझते हैं मेरे समीप वह हर्ष और सम्मान की बात है।" मैंने अपना गिलास उसके गिलास से मिलाते हुए कहा।

जेबुलनिसा बहुत निर्भीक लड़की थी। ऐसी लड़की मैंने पहले कभी नहीं देखी थी। परन्तु जब मुझे जानो से अन्तिम बात चीत का स्मरण हो आया तो मुझे ध्यान आया कि किसी समय जेबुलनिसा भी एक शर्मीली और सभ्य लड़की होगी। परन्तु धीरे-धीरे इसी वातावरण का एक अंग बनकर रह गई होगी।

बहुत बातें हुईं। विस्की के लिये जाम लुंढ़ाए गये। जेबुलनिसा निर्भीक तो पहले ही थी उसने इतनी पी कि अर्ध चेतना हीन सी हो गई और बहकी-बहकी बातें करने लगी।

शरीफ़ ने बताया कि वह उसे एक दलाल से दो हज़ार रुपये में लाया है। ये दो हज़ार रुपये मुझे देने पड़े।

महफ़िल बहुत देर तक चलती रही थी इसलिये नींद का गलबा ऐसा आया कि दूसरे दिन दोपहर तक बिस्तर से उठ न सका।

कमरे से बाहर निकला तो शरीफ़ मौजूद नहीं था। शरीफ़ों

को आवाज़ दी तो वह भी नहीं थी। जेबुलनिसा को पुकारा तो कोई उत्तर न मिला। बहुत चिन्तित हुआ। कोई नौकर चाकर नहीं था। दुकान को भी ताला लगा हुआ था। मैं साच में पड़ा हुआ था कि यह क्या मामला है। यह लोग कहाँ गायब हो गये हैं। कभी एक कमरे में जाता तो कभी दूसरे कमरे में। लाचार होकर अपने कमरे की ओर वापस हुआ तो किवाड़ में चटखनी के साथ एक लिफ़ाफ़ा रखा हुआ मिला। खोला तो मेरे पाँव तले से ज़मीन निकल गई। पत्र शरीफ़ ने ही लिखा था। कुछ इस प्रकार के शब्द थे।

नानक भाई !

मैंने अनुभव कर लिया है कि मुझे तुम से अलग हो जाना चाहिए। तुम बहुत भावुक स्वभाव के व्यक्ति हो। तुम्हारा यह स्वभाव हमें किसी दिन ले डूबेगा इस लिए मैं शरीफ़ाँ और जेबुलनिसा को लेकर यहाँ से जा रहा हूँ। हमें ढूंढने का बिल्कुल प्रयत्न न करें।"

तुम्हारा 'शरीफ़'

पत्र पढ़ते ही मैंने क्रोधावेश में पत्र को मरोड़ कर फेंक दिया। मैंने अपने आप से कहा—"यह धोका है, सरासर धोका। शरीफ़ से मुझे इस धोके की स्वप्न में भी आशा न थी। वह तो घाँस में छुपा हुआ साँप निकला.....।

परन्तु साँप निकल चुका था अब लकीर को पीटने से कोई लाभ नहीं था। दारोगा साहब का मकान अन्तिम आशा थी। वहाँ गया परन्तु उन्होंने भी रुष्टता से व्यवहार किया। समझ गया कि दाल में कुछ काला काला है। शरीफ़ और दारोगा जी की मिली भगत है इसी लिए वह भी सहायता करने के लिये

तैयार नहीं।

घर वापस आया तो बहुत निराश हो चुका था। खाना खाने की भी इच्छा न थी। रात को बिस्तर पर लेटा तो अनेक प्रकार के विचार विकल करने लगे। कभी सोचता कि शरीफ़ का पीछा करूं और हर कीमत पर उसे पकड़ लूं। कभी सोचता कि अब मुझे अकेले ही व्यापार करना चाहिये किसी को साझी नहीं बनाना चाहिए। कभी विचार आता कि कैम्बलपुर छोड़ दूं और लाहौर चल दूं। शायद वहाँ भाग्य का सितारा चमक उठे।

दो तीन दिन इसी उधेड़ बुन में बीत गये। आखिरकार मैंने निश्चय किया कि होटल बेच दूं और लाहौर चला जाऊं। ठीक भी यही था। पन्द्रह सौ रुपये में होटल का सामान बिका, चार हज़ार के लगभग रुपया बैंक से निकलवाया और एक दिन चुप चाप फ्रन्टियर मेल में बैठ कर लाहौर चल दिया। लाहौर में अधिक जान पहचान तो न थी परन्तु दो तीन बार आने जाने से जो परिचय हो चुका था उसी से फ़ायदा उठाने का निश्चय किया।

दो तीन दिन तो अनारकली के होटल में रहा और इसके बाद गढ़ी शाहू में बड़े से अहाते में तीन कमरे मिल गये। उस जगह अधिकांश घर मेहतरों के थे। पुलिस का एक आदमी भी रहता था। दूसरा एक व्यक्ति जो गुजरात का निवासी था और किसी जगह साधारण नौकर था एक छोटी सी कोठरी में ठहरा हुआ था।

जिस दिन जगह मिली वह उसी रात मेरे कमरे में आ गया। नमस्ते इत्यादि के बाद उसने कहा—"आपने भोजन आदि का क्या प्रबन्ध कर रखा है?"

मैंने कहा—"होटल में ही प्रबन्ध करूंगा।"

"क्यों ?" उसने आश्चर्य से पूछा।

"और क्या करूं। अकेला आदमी इसके सिवा और प्रबन्ध कर भी क्या सकता है ?"

उसने मुस्कुराते हुए कहा—"आप इसकी चिन्ता न करें हमारा घर आप का ही घर है। आप वहीं खाना खाएं आप को कोई कष्ट न होगा।"

मैंने बहुत इन्कार किया परन्तु उस का आग्रह बढ़ता गया और अन्त में मुझे उसकी बात माननी ही पड़ी।

उसकी पत्नी कौशल्या तीन चार दिन में ही मुझ से घुल-मिल गई और मुझे यह मालूम करने में कोई कठिनाई नहीं आई कि कौशल्या एक विलासी स्त्री थी और उसका पति उसकी कमाई पर ही निर्वाह करता था।

कौशल्या व्यक्तिगत रूप से नेक स्त्री थी। वह पहले शहर के किसी दूसरे भाग में रहती थी किन्तु मुहल्ले में बहुत बदनाम हो जाने के कारण भाग कर यहाँ रहने लगी थी।

मैंने दो तीन साड़ियाँ खरीद कर ला दीं। एक अंगूठी भ बनवा दी। इस से वह बहुत प्रसन्न हुई। एक दिन वह मुझे स्वयं ही फैज़बाग़ में ले गई, जहाँ उसने मुझे एक अधेड़ आयु की स्त्री से मिलाया। यह एक बहुत धनी स्त्री थी और ताँगे चलाने का कारोबार करती थी। सर्वसाधारण इसे 'माई ताँगे वाली' कहते थे। जब मैंने उसे अपना नाम बताया तो वह आश्चर्य से मुझे देखने लगी। कहने लगी—"तो तुम ही नानक चन्द हो ?"

मैंने पूछा—"आप को आश्चर्य क्यों हुआ ?"

वह कहने लगी—"तुम्हारा नाम तो बहुत सुना था परन्तु शक्ल आज ही देखी है।"

मैंने पूछा—"आपने मेरा नाम क्योंकर सुना ?"

उसने ठहाका लगा कर कहा—"तुम तो व्यर्थ में भोले बनते हो। अपनों को कौन नहीं पहचान लेता और फिर तुम तो हमारी तरह कारोबारी आदमी हो तुम्हारा नाम न जानें तो और किस का नाम जानेंगे ?"

बात सच्ची थी—"माई ताँगे वाली" बहुत अनुभवी स्त्री थी। उसने बताया कि उसके पास कम से कम दो दर्जन हिन्दू, मुसलमान और ईसाई लड़कियाँ हैं। वह प्रतिदिन चार-चार सौ रुपये कमाती है। उसने मुझे भी हर प्रकार से व्यापार में सहायता देने का विश्वास दिलाया।

बातचीत हो रही थी कि एक रौबदार व्यक्ति कमरे में प्रविष्ट हुआ। कोई बड़ा व्यक्ति मालूम होता था। मैं घबरा कर बाहर जाने लगा तो माई ने कहा—"कहाँ जाते हो यह तो अपने ही आदमी हैं।"

मैं रुका तो उसने कहा—"जानते नहीं यह शफ़ी साहब हैं। बड़े भारी अफ़सर हैं। इन की कृपा से ही तो हम स्वतन्त्रता से रह रहे हैं।"

मैंने कहा—"सेवक को नानक कहते हैं।"

"नये आदमी मालूम होते हो।" शफ़ी साहब ने मुझे सिर से पाँव तक देखते हुए कहा।

"जी हाँ" मैंने उत्तर दिया।

उन्होंने फिर उसी प्रकार घूर कर देखा और कहने लगे—"ज़रा संभल कर रहना मैं बड़ा कठोर व्यक्ति हूँ।"

मैं घबरा गया—'माई' कहने लगी—"इनका मतलब है कि कोई माल हो तो इन्हें भी पेश करना।" यह कहते हुए उसने ज़ोर से ठहाका लगाया।

मैंने कहा—"सेवक को कब सेवा से इन्कार है परन्तु अभी स्वयं ही कंगाल हूँ।"

मतलब यह था कि अभी शहर में प्रवेश भी नहीं किया और उचक्के सामने आ गये।

—::*—

: सात :

सावित्री और हश्मत

मैं तो शफ़ी साहब की बातों से डर गया था परन्तु जब उनके मुस्कुराते ही 'माई' के संकेत पर नौकर ने मेज़ बिछाकर विस्की की बोतल और गिलास रखने आरम्भ कर दिये तो मेरी जान में जान आ गई। माई कहने लगी—"घबराने की कोई बात नहीं, यह अपने महरबान हैं और इनकी सेवा करके ही हम लोग जीवित हैं।"

मैंने कहा—"बहुत खूब! चौधरी साहब मुझे भी अपना तुच्छ सेवक समझें।"

इसके बाद बहुत बातें हुईं। जिन से मालूम हुआ कि माई का व्यापार चमका हुआ है। दिखावे के लिए ताँगे रखे हुए हैं परन्तु उसकी आमदनी का वास्तविक साधन भ्रष्टाचार है। उसके पास प्रत्येक जाति की स्त्रियाँ हैं। उनके शरीर की बिकरी से माई और उसके साथी खूब गुलछर्रे उड़ाते हैं। 'माई' ने मुझे भी कुछ व्यापारिक गुर बताए और मैंने उनपर चलने का निश्चय किया।

दूसरे दिन भी जब मैं अपने घर बैठा हुआ सिग्रेट के कश लगा रहा था कौशल्या आई। उसने बताया कि "मुझे लीलू बुला रही है, अभी-अभी नौकर उसका सन्देशा लेकर आया है।"

मैंने पूछा—"कौन लीलू ?"

वह कहने लगी—"माई की सहेली। हमारे मकान के समीप ही रहती है। उस से मिलकर आपको बहुत लाभ होगा।"

मैंने कपड़े पहने और किवाड़ बन्द करके बाहर निकला। कौशल्या मेरे साथ थी। बाज़ार में आकर हम बिजली, पानी, भाप के द्वारा इलाज करने वाले डाक्टर गंडाराम की दुकान से कुछ कदम के फासले पर एक मकान पर रुके। कौशल्या ने दरवाज़ा खटखटाया तो एक स्त्री तेज़ी से सीढ़ियों से उतरती हुई हमारे सामने आकर खड़ी हो गई। उसने मुझे 'नमस्ते' कहा और मुस्कुराकर कहने लगी—"आपको कष्ट तो बहुत हुआ होगा परन्तु काम ही ऐसा आवश्यक था कि इसके बग़ैर हो ही नहीं सकता था।"

लीला अपने कमरे में ले गई। विस्की भेंट की। कौशल्या और मैं दोनों शराब पीने लगे, लीला भी भाग ले रही थी। कहने लगी—"यदि आप चाहें तो मैं आप की बहुत सहायता कर सकती हूँ।"

मैंने मुस्कुरा कर कहा—"मुझे आपके सहयोग की वास्तव में बहुत आवश्यकता है क्योंकि मैं नया-नया आदमी हूँ और शहर से तनिक भी परिचित नहीं।"

उसने कहा—"आप को किस जाति की लड़कियाँ चाहियें ?" मैंने कहा—"किसी जाति की हों। हिन्दू हों, मुसलमान हों, ईसाई हों या ऐंग्लो इंडियन। किसी तरह पहले तो काम चलाना है कोई भी मिल जाए।"

उसने कहा—"यदि आप कमीशन तै कर लें तो मैं आप के

लिये यह सेवा तो कर सकती हूँ।" यह कहते हुए उसने नौकर को आँख से संकेत किया और मिन्टों में छः सात लड़कियाँ मुस्कुराती हुई मेरे सामने आकर खड़ी हो गईं।

लीला कहने लगी—"इन में से जिस पर भी हाथ रखें उसे अपने साथ ले जा सकते हैं।"

मैंने ध्यान से देखा। उनमें एक ईसाई लड़की थी और दूसरी ऐंग्लो इंडियन, शेष सब हिन्दू थीं या मुसलमान।

मैंने ईसाई लड़की और एक दूसरी लड़की को चुना। वह ठहर गईं और शेष सब वापस चली गईं।

लीला कहने लगी—"ईसाई लड़की का नाम तो मैगी है और दूसरी लड़की का नाम है ताज़ी।"

"नाम तो बहुत अच्छे हैं।" मैंने मुस्कुराते हुए कहा।

वे लड़की भी खिल-खिलाकर हंसने लगीं।

लीला कहने लगी—"इन्हें आप अपने मकान पर ले जाएं। ये रहेंगी तो अपने घरों में ही परन्तु जब आप को आवश्यकता होगी उपस्थित हो जाया करेंगी।"

मैंने सन्तोष प्रकट किया और लौटने लगा तो लीला ने मुझे रोक कर कहा—"एक बात का ध्यान रखना। शफ़ी को सब रहस्य न बताना क्योंकि ये लोग बहुत बुरे होते हैं किसी समय हानि भी पहुँचा देते हैं।"

मैंने कहा—"शफ़ी साहब तो सहायता देने का वचन दे चुके हैं।"

लीला ने कहा—"यह ठीक है वह सहायता भी करेंगे परन्तु यदि सारा भेद बता दिया जाए तो भय रहता है।" और फिर

उसने रुक कर गम्भीरता से कहा—"शहर का डी० एस० पी० बड़ा भयानक व्यक्ति है उससे अवश्य बच कर रहना।"

मैंने कहा—"डी० एस० पी० कौन है और वह किस प्रकार भयानक है ?"

लीला कहने लगी—"डी० एस० पी० चौधरी रामसिंह है। जाट है पूरा जाट। गिरफ़्तारियाँ कर रहा है। अभी उसने स्वयं कई मकानों पर छापा मार कर गिरफ़्तारियाँ की हैं।"

मुझे भय तो लगा परन्तु मैंने कहा—"आप जैसे उस्तादों के होते हुए मेरा कुछ बिगड़ नहीं सकता, मुझे पूर्ण विश्वास है।"

लीला मुस्कुरा दी। कहने लगी—"यह तो आप की महानता है वरना मेरी क्या बिसात है।"

और जब हम वापस आए तो कौशल्या कहने लगी—"लीला की बात वास्तव में ठीक है। चौधरी रामसिंह बड़ा भयानक मनुष्य है। जैसा नाम है वैसा ही वज्र की भाँति कठोर अफ़सर भी है। उससे सावधान होकर रहना होगा।"

कौशल्या मेरी सहयोगी बन गई और माई तथा लीला सहायक। इस प्रकार मैंने धीरे-धीरे अपने पाँव फैलाने आरम्भ कर दिये।

आज मैं पग-पग पर ठोकरें खाने के बाद निस्सन्देह अपराधों से तोबा कर चुका हूँ। परन्तु कैम्बलपुर के आघात के बाद लाहौर आकर मैं ऐसा बदला कि आज जब कि मैं बीती हुई घटनाओं पर विचार करता हूँ तो अनुभव करता हूँ कि मेरी आत्मा मुर्दा हो चुकी है और यदि भाग्य मुझे ठोकरें न लगाता तो सम्भवतः मुझे फाँसी पर लटका दिया जाता या मैं काले

पानी में एक भयानक अपराधी की भाँति जेलों में सड़ता होता।

आप में से जिन व्यक्तियों ने लाहौर देखा है और लाहौर में रहे हैं उन्हें निस्संदेह लाहौर का वास्तविक रूप कभी दिखाई न दिया हो परन्तु मैं तो उस जीवन में समा चुका था, उसका अंग बन चुका था। इस लिए मुझ से अच्छा कोई व्यक्ति लाहौर के आन्तरिक जीवन का वर्णन नहीं कर सकता।

मेरा व्यापारिक सम्बन्ध जिन होटलों से था उन में से मेकलोड रोड का प्रसिद्ध रैस्टोरैंट गुलशन भी सम्मिलित था। उस होटल का मालिक न केवल मेरे और दूसरे व्यक्तियों के अड्डों से सम्बन्ध ही रखता था बल्कि उसके पास एक सुन्दर स्त्री और दो लड़कियाँ भी थीं। उस स्त्री को वह अपनी पत्नी प्रकट करता था और लड़कियों को अपनी बेटियाँ। वह व्यक्ति किसी समय सरकारी नौकर था परन्तु किसी अपराध के कारण हटा दिया गया था।

उसका एक मकान मोहनी रोड पर था। यहाँ भी उसने एक अड्डा खोल रखा था। इसके अतिरिक्त मेरा सम्बन्ध आस्ट्रेलेशिया बंक के पिछवाड़े एक गली में रहने वाली एक स्त्री मरियम से था। यह स्त्री भागी हुई थी और अपनी लड़की से वेश्यावृत्ति कराती थी। मोहनी रोड पर खालसा हाई स्कूल के समीप एक स्त्री शम्शाद भी मेरे काम में सहायता करती थी। चौबच्चा साहब में एक ईसाई स्त्री जो अब मर गई है प्रायः मुझ से भेंट करती थी। शाही मुहल्ले के सीमित क्षेत्र में जहाँ वेश्याओं का प्रवेश करना वर्जित है वहाँ तो कई अड्डे थे जिन से मेरा घनिष्ट व्यापारिक सम्बन्ध था। कृष्ण नगर के एक स्कूल टीचर की लड़की सावित्री

प्रायः मेरे पास आया करती थी और मैं उसे मालरोड के होटलों में ले जाया करता था। एक ऐसा होटल ग्वालमंडी में भी था।

मेरे पास कौशल्या, मैगी, ताजी और सावित्री के अतिरिक्त चार और लड़कियाँ भी थीं जिन्हें मैं किसी समय भी बुला सकता था। उनके घर वालों को सब कुछ ज्ञात था परन्तु उनसे मेरी बातचीत कभी न हुई।

सावित्री से जान पहिचान कराने वाले तारघर के एक रिटायर्ड बाबू थे जो उनके मकान के समीप रहते थे। प्रथम भेंट वर्षा की एक शाम को हुई जब कौशल्या उन दोनों को लेकर आई। बाबू साहब ने सावित्री की जो कहानी सुनाई उससे मैं बहुत प्रभावित हुआ। परन्तु जैसा कि मैं पहले बता चुका हूँ लाहौर आकर मेरा हृदय इतना कठोर हो चुका था कि मैं भावुकता के प्रवाह में बहने का अभ्यस्त न रहा था।

बाबू जी ने बताया कि सावित्री के पिता जी ने चार लड़कियाँ और लड़के होने पर भी दूसरा विवाह कर लिया है। सावित्री ने बहुत विरोध किया, बहुत मना किया, कई दिन तक भोजन नहीं किया। पिता जी से यहाँ तक कहा कि यदि वह दूसरा विवाह न करें तो वह सारी उम्र कंवारी रहकर उनकी सेवा करेगी। किन्तु जिद्दी बाप ने एक न मानी और दुल्हन को ले आया। लड़की पर उसका बहुत बुरा प्रभाव पड़ा। इन बाबू जी ने उसके प्रति सहानुभूति प्रकट की और धीरे-धीरे उसे अपने साथ मिलाकर उसे इस रास्ते पर ले आये। इधर सौतेली मां भी काबू से बाहर निकल गई। मास्टरजी की चापलूसी ने उसे

बिगाड़ दिया और वह बुरे रास्ते पर पड़ गई। बाबू जी ने बताया कि सौतेली मां सावित्रीदेवी को शरीर बेचने के लिए विवश करती थी। और अब जबकि सावित्री ने देखा कि उसके सामने कोई दूसरा रास्ता नहीं, पिता से शिकायत करे तो उल्टा पिटती है तो उसने विवश होकर अपने लिए स्वतन्त्र पथ ग्रहण कर लिया और इस प्रकार मां बेटी दोनों ने विद्रोह कर दिया।

मैंने सावित्री को बहुत सब्ज़बाग दिखाए। वह वास्तव में सुन्दर थी। मोटी-मोटी आँखें, गोरा चिट्टा रंग। धानी रंग की साड़ी पहने हुए आई तो उसे देखकर मेरे शरीर में भी रोमाँच हो आया।

मैंने कहा—"तुम किसी प्रकार की चिन्ता मत करो, मैं तुम्हें थोड़े दिनों में ही इतना मालामाल कर दूंगा कि तुम्हें स्वयं अपने भाग्य पर ईर्षा होने लगेगी।"

सावित्री के मुख पर हल्की सी मुस्कुराहट खिली।

मैंने फिर कहा—"यदि तुम चाहो तो तुम्हारे लिये माल रोड पर किसी फ्लैट का प्रबन्ध किया जा सकता है वरना तुम कृष्ण नगर में ही रहते हुए आ सकती हो।"

मालरोड के फ्लैट की चर्चा सुन कर बाबू जी का माथा ठिनका। कहने लगे—"हम तो कृष्णनगर में ही ठीक हैं परन्तु तालमेल रखने के लिये अच्छा होगा कि हम प्रतिदिन शाम को सात और आठ बजे के बीच मल्का की प्रतिमा पर मिल लिया करें।"

मैंने यह तजवीज़ स्वीकार कर ली और जब चलते समय मैंने सावित्री को पचास रुपये दिये तो बाबू जी प्रसन्नता से नाच उठे।

यदि मैं इस समय उन लोगों के नाम लेने लगूं जो उस समय मेरे पास प्रायः आया करते थे तो आप काँप उठेंगे। आप को विश्वास नहीं आएगा कि ये मनुष्य जो समाज में उच्च स्थान रखते हैं व्यभिचार के अड्डों में आया जाया करते हैं।

एक दिन सावित्री एक लड़की को ले आई। वह लड़की बहुत सहमी हुई थी। सावित्री कहने लगी—"इस का नाम हश्मत है और बहुत दुखी लड़की है। आप इसे आश्रय देकर बहुत बड़े पुण्य के भागी बनेंगे।"

लड़की सिर झुकाए खड़ी थी। सावित्री ने मुझे आँख से संकेत किया। मैं समझ गया कि कोई शिकार है। तब भी बात रखने के लिए मैंने कहा—"तुम प्रति दिन कोई न कोई फ़रमाइश लेकर आ जाती हो। आखिर यह लड़की कौन है? कहाँ से आई है और मैं इसकी क्या सहायता कर सकता हूँ? कुछ बताओ तो सही?"

सावित्री ने कहा—"हश्मत शाहआलमी के अन्दर मस्जिद वाली गली में रहती है। इसका भाई पहलवान है और मोची दरवाजे के बाहर टोके का काम करता है। उसकी पत्नी इस लड़की को व्यभिचार के पथ पर डालना चाहती है। हश्मत का इन्कार उसके लिए विपत्ति बनी और आखिरकार वह एक व्यक्ति से सम्बन्ध स्थापित करने के लिए विवश हो गई, जिसे उसकी भावज पसन्द करती थी। हश्मत को गर्भ रह गया है यह रहस्य घर में प्रकट हो गया है। इसलिये इसे जान का खतरा है। एक सहेली ने मुझे बताया इसलिए इसे यहाँ ले आई हूँ ताकि किसी को पता न लगे और इस की जान बच जाए।

मैं एक क्षण के लिए मौन रहा। इसके बाद मैंने कहा—"मुझे हश्मत से सहानुभूति है परन्तु समस्या बड़ी भयानक है। यदि भेद खुल गया तो इसके साथ ही मैं भी मारा जाऊंगा।"

सावित्री कहने लगी—"तो क्या तुम्हारी विपत्ति के कारण हश्मत आत्मघात कर ले ?"

मैंने कहा—"यह बात तो नहीं, परन्तु मैं अपने आपको बेबस पाता हूँ।"

हश्मत मेरे पाँव पर गिर पड़ी। कहने लगी—"भाई साहब ! आप जिस प्रकार भी हो मेरी सहायता करें। मुझे अपने घर में नौकरानी बना लें आप के बर्तन साफ़ करके पेट पाल लूंगी।"

तरस खाने का कोई प्रश्न ही नहीं था। शिकार को फाँसने का तो मैं पहले ही निश्चय कर चुका था। इस समय केवल दिखावे की बातें कर रहा था इस लिये मैंने कहा—"मुझे तुम्हारे प्रति हार्दिक सहानुभूति है परन्तु कानून का मामला है क्या करूं। किसी को मालूम हो गया तो मैं अवश्य गिरफ़्तार हो जाऊंगा।"

हश्मत बहुत गिड़-गिड़ाई, सावित्री ने भी अपना अभिनय किया और आखिरकार मैंने हश्मत को आश्रय देने का बचन दे दिया। सावित्री को मैंने एक सौ रुपये दिये। वह चली गई और हश्मत को अन्दर भेज दिया।

उसी रात हश्मत को यह चकमा देकर कि उसे किसी सुरक्षित स्थान पर पहुंचा दूंगा, मैंने दिल्ली का रुख किया और जी० बी० रोड पर तीन हज़ार रुपये में बेच कर वापस चला गया।

हश्मत अब कहाँ है ? यह मैं नहीं जानता। परन्तु इस के

बाद उसके जो भी पत्र आये मैंने उनका उत्तर नहीं दिया। सम्भवतः यह मालूम होने पर कि उससे धोका हुआ है वह स्वयं ही मौन हो गई।

हश्मत के बाद एक लड़की बसन्ती आई। उसे मरियम ने गुजराँवाला से भगा कर मुझे सौंपा था। मरियम को तो मैंने यह कह कर चुप कर दिया कि बसन्ती भाग गई है और बसन्ती को देहली जाकर दो हज़ार रुपयों में बेच दिया। यह लड़की दूसरे नाम से अब भी देहली में रह रही है और थोड़े से वर्षों के अनुभव के बाद गुरू घंटाल बनी हुई है।

उन्ही दिनों एक लड़की जिसकी जाति भाटिया थी और जो रामनगर में रहती थी मेरे फंदे में फंसी। यह लड़की एक धनी परिवार की थी परन्तु एक नवयुवक ने उसके जीवन का सर्वनाश कर दिया था। उसे गर्भ रह गया था और बदनामी के भय से उसने विष खा लिया था। यह लड़की इन दिनों देहली में रहती है। लाहौर में वह कालेज में पढ़ती थी और मालरोड के एक होटल में सावित्री के द्वारा उस से मेरी जान पहचान हुई थी।

एक दिन उसके कारण हम मुग़लपुरा की नहर पर गिरफ़्तार होने लगे थे परन्तु भाग्य ने साथ दिया और हम बच गये। हमारे साथ तीन और व्यक्ति थे। मेरी मोटर मेरे पास थी। पुलिस के एक हवलदार ने हमें पकड़ लिया और तंग करने लगा। अन्त में फैसला हुआ कि डेढ़ सौ रुपया दे दिया जाए तो झगड़ा समाप्त हो सकता है। उस समय मुझे एक चाल सूझी। मैंने हवलदार और दूसरे आदमियों को चकमा दिया कि वे प्रतीक्षा करें मैं रुपये लाता हूँ।

वह इस चाल में आ गया। मैं उस लड़की को मोटर में बिठा कर शहर आ गया और दोबारा वापस नहीं गया। बाद में मालूम हुआ कि हमारे गाहक अपनी अंगूठियाँ उतरवा कर बड़ी कठिनता से प्राण बचा सके। परन्तु उन्हें मुझ से गिला करने का साहस न हुआ। साहस होता भी कैसे ? उल्टे उनकी बदनामी होती। आखिर वह कौन से नेक काम पर गये थे।

: आठ :

घातक कौन ?

उस दिन के बाद वह लड़की दोबारा मेरे पास नहीं आई।

हश्मत की तरह की एक लड़की अनारो से सम्बन्ध स्थापित हुआ। उसे 'माई ?' तांगे वाली भगा कर लाई थी। वह लड़की विवाहित थी और उसका पति उसे माई के पास लाया करता था। मुझ से भेंट हुई तो वह फूट-फूट कर रोने लगी। कहने लगी—"मैं इस जीवन से बहुत दुखी हूँ। यदि कोई अच्छा रास्ता दिखाई नहीं दिया तो आत्मघात कर लूंगी।" मैंने उसे घर से भाग निकलने के लिये प्रेरित किया। और जब वह मेरे काबू में आ गई तो मैंने उसे डेढ़ हज़ार रुपये में हीरा मंडी लाहौर में बेच दिया। उसे वहाँ कुछ दिनों तक छिपा कर रखने का चकमा दिया था परन्तु वहाँ लेजाकर उसे बेच डाला और यह झाँसा देकर निकल आया कि दूसरे दिन वापस आकर उसे ले जाऊंगा। वह दूसरा दिन कभी नहीं आया। वह लड़की कई जगह बिकी। अन्तिम बार उसका पता किया तो मालूम हुआ कि वह बल्केस के नाम से हट्टी में बैठी हुई थी और अनेक रोगों से ग्रसित थी।

लाहौर में रहकर तीन चार महीने में मैंने काफ़ी परिचय प्राप्त कर लिया। परिचितों में कई रईस थे, कई राय साहब और

खान साहब, सरकारी अफ़सर और अन्य व्यक्ति भी। इन लोगों की सहायता से मुझे अपना व्यापार फैलाने में बहुत सुविधा हुई और छः सात महीनों में ही मैंने बीस पच्चीस हज़ार रुपया इकट्ठा कर लिया तथा मेल जोल रखने वाले विभागों में अपने लिये एक स्थान पैदा कर लिया।

जिस स्थान पर मैं रहता था वहाँ ईसाइयों के कई परिवार बसे हुए थे। ये व्यक्ति अधिकांश जन्मजात ईसाई थे। उनके पूर्वजों ने किसी समय लालच या किसी और लाभ के कारण ईसाइयत स्वीकार की होगी। उनमें से कुछ एक मेरे प्रगाढ़ मित्र बन गये थे। एक मनुष्य अल्फ्रेड प्रसाद भी था। उम्र के दृष्टि-कोण से वह अभी बच्चा ही था परन्तु सर्वसाधारण से काफ़ी मेल जोल रखता था। वह मेरा भी मित्र बन गया और प्रायः मेरे घर आया करता था। एक और व्यक्ति विलियम जोज़फ़ था। सम्भवतः किसी सरकारी विभाग में नौकर था। अच्छी खासी वेतन पाता था परन्तु उसे भी मेरी भाँति यह बुरी आदत पड़ गई थी और इसी कारण से प्रायः मेरे पास आया जाया करता था। एक दिन आया तो कहने लगा—"आज एक शिकार काबू में आ रहा है कुछ दिलाने का वायदा करो तो बतला दूं।"

मैंने खिलखिला कर हंसते हुए कहा—"तो क्या तुम स्टाम लिखवाना चाहते हो? मुझ पर इतना विश्वास भी नहीं?"

वह कहने लगा—"यह बात तो नहीं, मैं तो शुभ सूचना देने के लिए भूमिका बाँध रहा था।"

फिर उसने बताया—"एक कालिज के प्रोफ़ेसर की सुशिक्षित लड़की एक नवयुवक के चुंगल में फंस गई है। उस नवयुवक के पास उस लड़की की तसवीरें हैं। यदि वे तस्वीरें हमारे हाथ

आ जाएं तो हम न केवल रुपया बटोर सकते हैं बल्कि उसे भी काबू में कर सकते हैं।"

मैंने पूछा—"उस नवयुवक से तुम्हारा परिचय क्योंकर हुआ?"

वह खिलखिला कर हंस पड़ा। कहने लगा—"परिचय तो श्रीनगर जाते हुए हो गया था। हम दोनों एक साथ एक ही बस में सफ़र कर रहे थे। उसने अपने प्रेम की कथा वर्णन करनी आरम्भ कर दी और आख़िरकार उस से अपनी तस्वीरें दिखाए बग़ैर न रहा गया। उसने सम्पूर्ण रहस्य उगल दिया। अब वह मेरे काबू में है।"

फ़िर उसने बताया "कि चूंकि वह नवयुवक अब उस लड़की की ओर से निराश हो चुका है इसलिये उसे आशा का लालच देकर वो तस्वीरें प्राप्त की जा सकती हैं।"

जोज़फ़ की यह युक्ति पसन्द आई। हमने उस नवयुवक को जिसका नाम सम्भवतः सुरेन्द्रपाल था और जिसने अभी अभी गवर्न्मेन्ट कालिज से बी० ए० परीक्षा पास की थी वेंग्ज़ में डिनर पर बुलाया। शराब के दो ही पैग चढ़ाने पर वह तो मजनू, कवि और साहित्यिक बन गया और वह प्रेम कहानियाँ वर्णन करने लग गया। कभी तो उसके ओठों पर मुस्कुराहट खेलती थी और कभी आँखों से आँसू बहने लगते थे। वह कह रहा था:—

"मैं अपने जीवन को कुर्बान कर दूंगा परन्तु पुष्पा को प्राप्त करके ही रहूँगा क्योंकि वह मेरी पत्नी है और मेरी ही होकर रहेगी।"

मैंने उसे कहा—"यदि मैं उसे तुम्हारे क़दमों में लाकर खड़ा

कर दूं तो.........?"

उसका मुख हर्ष से चमक उठा। कहने लगा—"यह हो जाए तो उम्र भर के लिए आपका दास बन जाऊंगा।"

मैंने उससे कुछ तस्वीरें ले लीं, यह चकमा देकर कि सावित्री के द्वारा पुष्पा से तालमेल करूंगा और उसे तुम्हारें लिये प्राप्त करके रहूँगा। वह इतना प्रसन्न हुआ कि उसने पुष्पा से ली हुई अंगूठी भी मेरे हवाले कर दी। कहने लगा—"मैं तो प्रतिशोध की आग से जल रहा हूँ। यदि पुष्पा का घमंड तोड़ दो तो मैं उसे भी तुम्हारे हवाले कर दूंगा। मेरे हृदय को किसी प्रकार साँत्वना प्राप्त होनी चाहिये।"

जोज़फ़ ने अपनी पत्नी को राज़ी किया और मैंने सावित्री को। वो दोनों पुष्पा से मिलकर उसे हमारे जाल में फाँसने के लिये तैयार हो गईं।

इस बीच में एक और घटना घटित हुई। निस्बतरोड के एक गर्ल्स कालिज की नवयुवती अध्यापिका का पीछा करते हुए एक नवयुवक रायबहादुर नरसिंहदास आनरेरी मजिस्ट्रेट के हाथों पिट गया। वह पकड़ा ही जाने वाला था कि मैंने तांगे पर बिठा लिया और अपने घर ले गया। वह अध्यापिका रामनगर मुल्तान रोड पर रहती थी। उसकी बहिन चैम्बरलेन रोड पर एक वकील के लड़के से ब्याही हुई थी। उस नवयुवक से सहानुभूति प्रकट करने का यह परिणाम हुआ कि मैंने माई तांगे वाली के द्वारा अध्यापिका के तांगेवाले को अपने साथ मिला लिया और एक दिन तांगेवाला उसे रामनगर पहुँचाने की बजाए सावित्री को पहले छोड़ने के बहाने माई तांगे वाली के घर ले गया।

सावित्री उसे अपना घर दिखाने जब ऊपर ले आई तो माई के नौकरों ने किवाड़ बन्द करके बाहर से ताला लगा दिया और इस प्रकार वह लड़की हमारे कब्जे में आ गई। उसका प्रेमी भी उपस्थित था। जब लड़की ने उसे देखा तो चिल्ला उठी और भागने लगी। परन्तु उसे भागने कौन देता था, हमारे बस में आ गई थी। बहुत रोई चिल्लाई। इसके बदले में खूब पिटी और जब पिस्तौल दिखाकर उसे समाप्त करने की धमकी दी तो विवश होकर उसने अपने आपको हमें सौंप दिया। हमने उसे छोड़ा तो उस समय जब रात की अन्धेरी छायाएं तीव्र गति से बढ़ रही थीं और हमें यह लिखकर दे दिया था कि वह सुन्दर से प्रेम करती है और इसी लिये यहाँ आई थी।

हमने उसे उसके घर वापस पहुँचा तो दिया परन्तु दूसरे दिन ही मालूम हुआ कि उसने विष खाकर आत्म-हत्या कर ली है। उसका आत्मघात मेरे अपराधों में एक और अपराध की वृद्धि थी। मुझे इस का दुख भी हुआ परन्तु इतना नहीं कि निराश होकर अपना धन्धा छोड़ देता। चूंकि मरने वाली को कुछ कहने का अवसर ही नहीं मिला था इस लिए यह बात आई गई हो गई और यह मामला समाप्त हो गया। तब भी आज जब मैं उस घटना को याद करता हूँ तो मेरा हृदय काँप उठता है। यद्यपि मैं अपने मस्तिष्क का बोझ हल्का करने के लिए ऐसे अपराधों का प्रायश्चित कर रहा हूँ परन्तु जिन लड़कियों ने मेरे हाथों तंग आकर अपना जीवन समाप्त किया, उनकी आत्माएं मुझे कभी क्षमा नहीं करेंगीं।

उधर पुष्पा के लिए भाग-दौड़ हो रही थी। सावित्री और कोशल्या जिस समय चाहतीं नेकी प्राप्त कर लेतीं और हमारे

पेसों से गुलछर्रे उड़ातीं।

एक दिन शाम को फिर लोरेंग में दावत हो रही थी कि मैंने एक केबिन में कौशल्या और सावित्री के ठहाके वायुमंडल में गूंजते हुए सुने। तनिक ध्यान दिया तो ज्ञात हुआ कि पुष्पा भी उनके साथ है और हंसी के ठहाकों में उनके साथ सम्मिलित हो रही है।

मैंने केबिन का पर्दा हटाया तो एक नौजवान सुन्दरी तो लजा सी गई परन्तु सावित्री ने तुरन्त मुझे पिता जी कह कर ठहरा लिया। कहने लगी—"हम अपनी सहेली के साथ चाए पीने के लिए आई हैं और थोड़ी देर तक घर पहुँच जाएंगी।"

मैं बाहर निकला तो सावित्री कौशल्या और पुष्पा को छोड़ कर मेरे साथ आ गई।

कहने लगी—"मानते हो कि नहीं, शिकार पूरी तरह से फाँस लिया है।"

मैं खिल-खिलाकर हंस पड़ा। मैंने कहा—"तुम तो वास्तव में अपने उस्ताद के कान भी कतरने लगीं।"

वह भी खिल-खिला पड़ी। कहने लगी—"अपने घर तो बैठने के लिए भी अच्छी जगह नहीं तुम माई के मकान में प्रबन्ध कर लो। वहीं ले आऊंगी आज रात के नौ बजे तक।"

और वह वचन के अनुसार उसे अपने साथ ले आई।

पुष्पा के मुख पर सौंदर्य और भोलेपन के भाव खेल रहे थे। उसने मुझ से "नमस्ते पिता जी" कहा तो मेरी आत्मा काँप गई। जानो के वे शब्द स्मरण हो आये जो उसने मेरे सामने अपनी चोली फाड़ते हुए कहे थे। और जिस के बाद मैंने जानो के सम्बन्ध में अन्तिम समाचार यह सुना था कि वह कूंवे में छलाँग

लगा कर मर गई है।

इस बार मैं अपनी भावनाओं पर अंकुश न रख सका। रंग में भंग डालना भी योग्य न था। थोड़ी सी बात-चीत के बाद ही आवश्यक काम का बहाना करके मैं बाहर निकल गया।

दूसरे दिन सुबह माई के मकान पर गया तो पुष्पा बिस्तर पर अचेत पड़ी थी। मेरे पाँव तले से ज़मीन निकल गई। मैंने सावित्री से पूछा—"इसे क्या हुआ है ? तुम लोगों ने इसे मार तो नहीं डाला ?"

वह खिल-खिलाकर हंस पड़ी। कहने लगी—"राम-राम हम भी यह चेष्टा कर सकती हैं ? आप की लाडली शराब के नशे में बदमस्त है। इतनी पी गई है कि होश हवाश भी गुम हो गये।"

मुझे विश्वास था कि यह झूठ कह रही है पुष्पा अपने आप शराब नहीं पी सकती। उसे या तो विवश किया गया है या उसे कोई नशे वाली दवा पिला कर मूर्छित कर दिया गया है।

मेरी कल्पना सत्य ही निकली। जब उसके प्रेमी को देखा तो वह दूसरे कमरे में आइने के सामने खड़ा हुआ कोई फ़िल्मी ग़ज़ल गुनगुना रहा था। मुझे देखते ही कहने लगा—"मेरा बोझ उतर गया है लाला ! मैंने प्रतिशोध ले लिया अब उसे तुम जो चाहो करो !"

मेरे मालूम करने पर उसने बताया कि पुष्पा उन के चुंगल में फंस कर खूब फड़फड़ाई। उसने बहुत विरोध किया और चीख पुकार की, परन्तु एक भी पेश न चली। उसने तंग आकर खिड़की से कूदने की चेष्टा की किन्तु सफल न हो सकी। इस

पर उसे ज़बर्दस्ती शराब पिलाई गई और उसे विवश किया गया कि वह अपने आप को पूर्ण रूप से अपने नाममात्र के प्रेमी और 'माई' के भाइयों के हवाले कर दे। यह घृणित ड्रामा बहुत देर गये रात तक चलता रहा। यहाँ तक कि एक के ऊपर एक आघातों से पुष्पा अचेत हो गई। अब सब मौन थे, सब सन्तुष्ट थे और उस बेचारी का किसी को ध्यान ही न था।

मुझे बहुत क्रोध आया। मैंने पाज़ को बहुत झाड़ फटकार पिलाई, बुरा भला कहा और फिर पुष्पा की बेहोशी दूर करने लगा।

पुष्पा मेरी गोद में थी। कमरे में से सब को बाहर निकाल दिया था। काफ़ी दौड़-धूप के बाद उसने आँखें खोलीं तो एकदम चीख मार कर फिर मूर्छित हो गई।

मैंने उसके सिर और पीठ पर हाथ फेरा और कहा—"बेटी।"

'बेटी' का शब्द सुन कर वह चौंक पड़ी और आँखें खोल कर पागलों की भाँति मेरी ओर देखने लगी।

मेरी आँखों में आँसू आ गये। मैंने कहा—"मैं तुम से बहुत लज्जित हूँ, बहुत शर्मिन्दा हूँ। तुम से धोका हुआ यह मुझे अभी-अभी मालूम हुआ है।"

उसने अपने आप को मुझ से अलग कर लिया। अपने सिर पर क्रोध से हाथ मारते हुए उसने कहा—"मेरा जीवन तो नष्ट हो गया। मुझे धोके से यहाँ लाकर बरबाद कर दिया गया है। अब मैं कहाँ जाऊंगी, मेरा तो कोई भी ठौर ठिकाना नहीं।"

मैं उत्तर सोच ही रहा था कि उसने मेरे पाँवों पर सिर रख दिया और पृथ्वी पर ज़ोर-ज़ोर से पटखने लगी।

मैंने उसे भुजाओं में उठा लिया। मैंने देखा कि उसके सिर से खून बह रहा था। वह कह रही थी —"मुझे अपमानित करो, पददलित करो, बोटी-बोटी काट दो, विष देकर समाप्त कर दो। मैं तो इसी के लिए पैदा हुई थी। मेरे भाग्य में यही बदा था कि ये डाकू मुझे धोका दें और मेरा सर्वनाश कर दें।"

मैंने जबर्दस्ती उसे अपने साथ बिठा लिया और उसके आँसू पोंछ कर कहने लगा—"मुझे सब कुछ मालूम हो गया है परन्तु अब रोने धोने से क्या हो सकता है ?"

उसने अपने सिर को जोर से दीवार के साथ टकराया और कहने लगी—"अब मेरे लिए दो ही रास्ते हैं तीसरा रास्ता कोई नहीं ?"

मैंने पूछा—"क्या ?"

वह कहने लगी—"मेरा गला घोंट दो या मुझे इसी समय किसी और जगह ले चलो।"

मैंने कहा—"तुम चिन्ता मत करो, मैं तुम्हें तुम्हारे घर पहुँचा दूंगा।"

उसने रोते हुए कहा—"अब मेरा घर कोई नहीं रहा। जो घर था उसको आप महानुभावों ने समाप्त कर दिया। अब मेरा घर शमशानभूमि ही हो सकता है।"

मैंने उसे फिर अपनी ओर खींच लिया किन्तु मैं जितने उस के आँसू पूंछता था उतनी ही वह रोती जा रही थी।

इधर मेरे पास भी तो कोई उत्तर नहीं था। कुछ सूझता ही नहीं था और वह रोते-रोते कहे जा रही थी—"मैं बरबाद हो गई, मेरे माता-पिता को तो बरबाद मत करो। उन्हें समझ लेने दो कि मैं मर गई। वहाँ भेज कर उनका जीवन नष्ट मत करो।"

मैंने उसे विश्वास दिलाया कि वह जो कुछ कहेगी वैसा ही होगा। बड़ी कठिनता से समझाया और कार पर बिठाकर लाहौर से बाहर ले गया। शाहदरा में एक मकान में रखा। कौशल्या को उसकी देख-रेक के लिए नियुक्त किया और स्वयं प्रबन्ध करने के लिए वापस आ गया।

कौशल्या को चेता दिया था परन्तु रात को जब वह सन्देश लेकर आई कि पुष्पा ने छत से लटक कर आत्मघात कर लिया है तो मुझे ऐसा आघात पहुँचा कि मैं आज भी पूर्ण रूप से वर्णन नहीं कर सकता।

पुष्पा एक निर्दोष और भोली लड़की थी और उस की मौत का उत्तरदायित्व मेरे सिवा और किसी पर नहीं था। यदि मैं जोज़फ़ की बातों में आकर पाल से सम्बन्ध स्थापित न करता तो उस भोली जान का खून न होता।

कई दिनों के बाद आज मस्तिष्क पुनः विकल हो रहा था और आत्मा मुझे धिक्कार रही थी। हमने बड़ी कठिनता से पुष्पा की लाश ठिकाने लगाई और वापस आ गये।

उस रात को मैं पानी से निकाली हुई मछली की भाँति बिस्तर पर तड़पता रहा। ऐसा मालूम होता था कि जानो और पुष्पा की आत्माएं खोपड़ियां के हार लिये हुए मेरे सामने खड़ी हैं और कह रही हैं कि तुम्हारी भी यही दशा होगी। तुम्हारी लाश को भी किसी निर्जन स्थान में डाल दिया जाएगा और गिद्ध उसे नोच-नोच कर खाएंगे। यदि तुझे नर्क के जलते हुए कुंड में डाला जाए तो तुझे मालूम होगा कि मृत्यु कितनी भयानक वस्तु है।

कौशल्या भी बहुत चिन्तित थी। उसे भी रात भर नींद

नहीं आई थी। सुबह सवेरे आकर कहने लगी—"एक बात पूछती हूँ। यदि किसी को इस घटना का ज्ञान हो गया तो हमारे प्राणों की कुशल नहीं।"

मैं मौन धारण किये कल के दुखित ड्रामे की याद कर रहा था। उसने फिर वही प्रश्न दोहराया तो मैंने चौंक कर कहा—"एं।"

वह कहने लगी—"यदि पुलिस को ज्ञात हो गया तो हम क्या करेंगे ?"

मैं घबरा गया। तब भी मैंने साहस करते हुए कहा—"अभी बैंक का कोष शेष है। सिक्कों की झंकार सब को चुप कर सकती है।"

"परन्तु चौधरी साहब तो बहुत कठोर मनुष्य हैं यदि उनके कान में भनक पड़ गई तो वह किसी प्रकार भी काबू में नहीं आएंगे ?"

मैंने कहा—"तुम चिन्ता मत करो उन्हें कानों कान खबर भी नहीं होगी मैं सारे बचाओ का प्रबन्ध कर लूंगा।"

कहने को तो कह दिया परन्तु मेरा हृदय काँप रहा था। मुझे आत्म विश्वास नहीं रहा था और सच तो यह है कि पापी का हृदय बेईमान होता है। उस दिन प्रथम बार परमात्मा का नाम लिया और मन्दिर में भी गया। शराब नहीं पी बल्कि सारा दिन मौन भाव से राम-राम करता रहा।

शाम को सावित्री आई तो यह मनहूस समाचार लेती आई कि रामनगर का तनूर वाला और उसके भाई गिरफ़्तार कर लिये गये। उन्होंने सामने के साहूकार को मार कर उसकी लाश अपने तनूर में जला दी थी और हड्डियाँ लकड़ी की टाल में ज़मीन में

दबा दी थीं।

मैं चौंक पड़ा। भयभीत होकर मैंने पूछा—"यह क्योंकर हुआ ? पुलिस को कैसे मालूम हुआ ?"

सावित्री हाँप रही थी। कहने लगी—"तनूर वाले के पिता ने मूर्खता की। वह गिरफ़्तारी के भय से गाँव में नम्बरदार से मिला। उसे सब कुछ बता कर सहायता के लिए विनती करने लगा तो नम्बरदार ने लाहौर पहुँच कर उल्टा पुलिस को सूचना देकर तीनों भाइयों को गिरफ़्तार करा दिया।"

सावित्री कह रही थी—"अब तो उन्हें फाँसी ही लगेगी। फिर उन्होंने भी तो हृदय हीनता की हद हो कर दी। अपने ही रक्षक को धोका देकर निर्दयता से कतल कर दिया था।"

सावित्री को तनूर वाले से कोई सहानुभूति नहीं थी। और मैं सोच रहा था कि यदि मेरी भी यही दशा हुई तो ये व्यक्ति मेरी गिरफ़्तारी का किस्सा भी इसी प्रकार वर्णन करेंगे।

: नौ :

हरिद्वार में

दूसरे दिन मैंने कौशल्या को बुलाया। वह भी कुछ सहमी हुई थी। मैंने किवाड़ बन्द कर लिये और उस से कहा—"एक बात पूछूं, ठीक-ठीक बताओगी क्या ?"

उसने कम्पित स्वर में कहा—"अवश्य बताऊंगी। आपके सामने मैंने आज तक झूठ नहीं बोला।"

मैंने कहा—"यदि मुझे गिरफ़्तार कर लिया जाए तो तुम मेरे विरुद्ध तो बयान नहीं दोगी ?"

वह मुस्कुरा कर कहने लगी—"यह भी कभी हो सकता है। मैं तो आपकी कृतज्ञ हूँ। मुझ से कृतघ्नता की क्योंकर आशंका हुई ?"

कहने को तो उसने कह दिया और मैंने भी सुन लिया परन्तु मुझे विश्वास नहीं होता था। सरदाराँ का कटु अनुभव मुझे स्मरण था और शरीफ़ की धोकादेही भी मालूम थी। उस दिन से मुझे शंका होने लगी कि मैं अवश्य किसी दिन विपत्ति-ग्रस्त हो जाऊंगा और मेरे चहुँओर के व्यक्ति मेरी सहायता करने की अपेक्षा धोका देंगे।

दूसरे दिन शहर में एक साथ कई छापे पड़े और कई व्यक्ति

गिरफ़्तार कर लिये गये। मुझे कौशल्या ने सूचित किया तो मैं काँप उठा। कौशल्या कहने लगी—"अच्छा होगा कि तुम दस पाँच दिन के लिये कहीं भाग जाओ, ताकि तुम पर कोई हाथ न डाल सके और यदि इस बीच में कोई बात हो भी गई तो तुम्हें सूचना दे दी जाएगी।"

पुलिस हमारे मकान के समीप से भी गुजरी और उसने गढ़ीसाहू में भी चार पाँच मकानों पर छापे मारकर गिरफ़्तारियाँ कीं। मुझे मालूम हुआ कि चौधरी रामसिंह स्वयं उन मकानों की तलाशियों में सम्मिलित हैं। तब भी मैं बच गया, मालूम नहीं क्यों? चौधरी साहब को मेरे बड़े काम धन्धे का अभी तक मालूम नहीं हुआ था।

उस रात मैंने दिल्ली का टिकट लिया और फ्रन्टियर मेल पर लाहौर से दिल्ली के लिए रवाना हो गया।

दिल्ली बहुत बड़ा शहर है और उस शहर में मेरे कई साथी रहते थे। परन्तु मैंने किसी से मिलना ठीक न समझा बल्कि दूसरी गाड़ी से हरिद्वार के लिए चल दिया।

मैंने अपने जीवन का एक बहुमूल्य भाग पाप कर्म और अपराधों में बिताया है। इतना होने पर भी मैंने हरिद्वार की पवित्रता और उसके महत्व से कभी इन्कार नहीं किया। परन्तु खेद है हरिद्वार में जो अपनी आँखों से देखा, उस से मेरा हृदय काँप उठा। आप विश्वास करें, यह वास्तविकता है कि हरिद्वार में वह सब कुछ होता है जिसकी आप कल्पना भी नहीं कर सकते। हरिद्वार में हर प्रकार के मनुष्य मौजूद हैं। वे भी जो यात्रा के लिये जाते हैं, और वह भी जो उसे भोग विलास का गढ़ बनाने के लिये तुले हुए हैं।

मैं जिस धर्मशाला में ठहरा हुआ था वह एक बड़े धनी महानुभाव ने बनवाई थी। उसके साथ एक अखाड़ा भी था। उस धर्मशाला में ठहरने के लिये गया तो बड़ी कठिनाई के बाद स्थान मिला और पंडित जी को दस रुपये भेंट करने पड़े। क्योंकि इसके बगैर यही उत्तर था कि 'रहने के लिये कमरा खाली नहीं है' और दूसरी शर्त यह थी कि भोजन का प्रबन्ध भी यहीं होगा। मैंने यह शर्त स्वीकार कर ली। परन्तु जब तीसरी शर्त भी सामने आ गई तो मैं काँप उठा। मेरे शरीर की नस नस पाप कर्मों में डूबी हुई हैं परन्तु उस समय पंडित जी को वास्तविक रूप में देखा तो मैं चकित रह गया।

पंडित जी के साथ एक देवी जी थीं। कोई बीस बाईस वर्ष की उम्र होगी। सुन्दर तो नहीं थीं किन्तु बनाओ शृङ्गार में काफी समय नष्ट किया हुआ मालूम होता था। कहने लगे—"यदि किसी और चीज़ की आवश्यकता हो तो इन्हें कह देना। मुझे एक आवश्यक काम से बाहर जाना पड़ गया है।"

मैंने आँखें नीची कर लीं और कहा—"आप की कृपा से अब किसी चीज़ की आवश्यकता नहीं।"

देवी जी उस समय तो चली गईं परन्तु शाम के धुंधलके में एक बर्तन उठाए हुए आ पहुँचीं। कहने लगीं—"आप को पानी चाहिये?"

मुझे शर्म सी आ गई। मैंने कोई उत्तर न दिया और वह ताँबे का बर्तन तथा गिलास रख कर चली गईं।

मैं अपने विचारों में निमग्न था। सोच रहा था कि अब लाहौर में क्या हो रहा होगा। कहीं मकान पर छापा तो नहीं पड़ा, कौशल्या गिरफ़्तार तो नहीं कर ली गई। इतने में फिर वही

देवी जी आ पहुँचीं। मुझे तब पता लगा जब उनकी यह आवाज़ सुन कर मैं चौंक पड़ा।

"आप दूध तो नहीं पीएंगे ?"

मैंने कहा—"नहीं, मुझे कुछ नहीं चाहिये।"

उनके जाने के बाद मैंने कपड़े उतारे और सोने से पहले पानी पीने लगा परन्तु एक घंट ही पीया था कि गिलास मेरे हाथों से छूट पड़ा।

गिलास में पानी नहीं था बल्कि बर्फ़ से ठंडी की हुई शराब थी।

मुझे बहुत क्रोध आया। समझ गया कि यह किसी महन्त का अखाड़ा नहीं है भोग विलास का गढ़ है। कोई दूसरा स्थान होता तो मुझे यह अनुचित न जान पड़ता परन्तु हरिद्वार में यह बात देखकर मैं काँप उठा। मैंने क्रोध में आकर बर्तन उन्ढेल दिया और सोने लगा कि एक ओर से स्त्री के ठहाके का स्वर सुनाई दिया और फिर वही स्त्री चँद्रमा के प्रकाश में मुस्कुराती हुई सामने खड़ी हो गई।

मैं उस से कुछ कहने ही वाला था कि उसने स्वयं ही मोरनी की भाँति नाचते हुए कहा—"आप अजीब यात्री हैं। आपको क्या किसी चीज़ की भी आवश्यकता नहीं ?"

मैं झुंझला उठा क्योंकि मैं अपनी अवस्था के कारण चिन्तित था और उसको कुछ और ही सूझ रही थी। हरिद्वार जैसे पवित्र स्थान पर एक महन्त के अखाड़े में एक स्त्री के इस प्रकार निर्भीक आग्रह से मुझे यह जिज्ञासा भी हुई कि यह स्त्री कौन है ? और जिन व्यक्तियों के संकेतों पर यह नाच रही है वह किस प्रकार के हैं।

मैं बिस्तर से उठ बैठा। मैंने कहा—"बिराजिये, आपका नाम क्या है ?"

उसने कुर्सी पर बैठते हुए कहा—"मुझे शरबती कहते हैं।"

मैंने कहा—"नाम तो ठीक है। शर्बत की भाँति मीठी मालूम होती हो।"

उसने सम्भवतः इन शब्दों को मेरी प्राकृतिक निर्बलता समझा इसलिए और भी खुलकर कहने लगी—"मैं तो आपकी दासी हूँ। किसी चीज़ की आवश्यकता हो तो अभी ला उपस्थित करती हूँ। आप नशा आदि नहीं करते क्या ?"

मैंने खिलखिला कर कहा—"तुम्हें देख लिया, इस से अधिक नशा और क्या हो सकता है ?"

वह खिलखिला कर हंसने लगी।

मैंने तकिया उठाया और उसके नीचे रखे हुए दस-दस रुपयों के चार नोट उसके हाथ में देते हुए कहा—"पंडित जी कहाँ हैं, कहीं इधर-उधर मौजूद तो नहीं ?"

"वो नीचे कमरे में सो रहे हैं।" उसने मुस्कुराते हुए कहा।

मैंने बीस रुपये के और नोट निकाले और उसके हवाले करते हुए कहा—"ज़रा किवाड़ बन्द कर लो, मैं तुम से एकान्त में एक बात पूछना चाहता हूँ।"

वह गम्भीर सी हो गई। कहने लगी—"मैं तो प्रत्येक सेवा के लिये उपस्थित हूँ।"

मैंने मुस्कुरा कर कहा—"मुझे सेवा तो कोई नहीं चाहिये केवल एक बात पूछनी है।"

उसने किवाड़ बन्द कर दिये और चकित होकर कहने लगी—"कहिये आप क्या चाहते हैं ?"

मैंने कहा—"यह पंडित जी आपके क्या लगते हैं ?"

उसने कहा—"मेरे पति।"

मैंने कहा—"यह पति होकर आपका जीवन नष्ट कर रहे हैं ?"

वह मौन हो गई। कुछ क्षणों के बाद उसने कहा—"आपको इससे क्या मतलब ? आप जो चाहते हैं बताएं। किसी चीज़ की आवश्यकता हो तो उपस्थित करूं।"

मेरी ओर से कोई उत्तर न मिलने पर उसने किवाड़ खोल दिये और कहने लगी—"यदि कोई काम नहीं तो मैं जाती हूँ।"

उसने पाँव बढ़ाए और जाने लगी। मैंने भी रोका नहीं और वह चली गई। किवाड़ बन्द करके मैं बिस्तर पर लेट तो गया परन्तु मुझे नींद नहीं आई। बहुत देर गये रात तक उस घटना पर सोचता ही रहा।

सुबह हुई। गंगा में स्नान किया। मन्दिरों की यात्रा की। हर की पैड़ी पर बैठ कर एकान्तचित्त होकर परमात्मा का ध्यान किया वास्तव में बहुत आनन्द प्राप्त हुआ। उस रोज़ सारा दिन घूमता ही रहा। शाम को वापस आया तो महन्त जी मुस्कुराते हुए सामने आ गये। कहने लगे—"आज तो बहुत घूमे, देख आये हरिद्वार को ?"

मैंने कहा—"आपकी कृपा से।"

दरवाज़ा खोला, कुर्सियाँ बाहर निकालीं और महन्त जी बैठ गये एक कुर्सी पर।

इधर-उधर की बातें हो रहीं थीं कि महन्त जी कहने लगे—"आप कुछ खोए-खोए से मालूम होते हैं ?"

मैंने कहा—"नहीं तो ! मुझे तो कोई चिन्ता नहीं, कोई सोच

विचार नहीं और फिर आपके होते हुए इस स्थान पर किसी को चिन्ता ही क्या हो सकती है ?"

महन्त जी खिलखिलाकर हंस पड़े। कहने लगे—"यही तो मैं भी कहता हूँ।"

फिर एक क्षण मौन रहने के पश्चात् कहने लगे—"अपना तो यह एक मनोरंजन ही है। आप महानुभावों की कृपा से जीवन आनन्द से बीत रहा है वरना क्या अखाड़ा और क्या परमात्मा की भक्ति ?"

मैंने कहा—"मुझे आप की स्पष्टवादिता पर बहुत प्रसन्नता हुई परन्तु आप का प्रबन्ध कोई अधिक मालूम नहीं होता ?"

वह कहने लगे—"मैं भी यही सोच रहा था कि आप को भ्रम हुआ है वरना आप यहाँ से दूर रहने का प्रयत्न न करते ?"

महन्त ज कुर्सी से उठे, एक दो कदम टहलने के बाद फिर बैठ गये और कहने लगे—"आप के पसन्द की बात है वरना यहाँ तो बढ़िया से बढ़िया माल मौजूद है।"

मैंने पूछा—"मुझे माल वाल से इतनी दिलचस्पी नहीं, दिलचस्पी है तो यह जानने को कि हरिद्वार जैसे तीर्थ स्थानों मे और फिर ऐसे पवित्र स्थानों में, यह लड़कियाँ क्यों रखी जाती हैं ? यहाँ तो पूजा पाठ होना चाहिए।"

महन्त जी ने मेरी पीठ पर जोर से हाथ मारा और खिल-खिला कर कहने लगे—"आप जैसे रंगीन स्वभाव के व्यक्तियों को ही इसके बगैर चैन न आए तो हम कहाँ जाएं ?" और फिर उन्होंने जूता पहनते हुए कहा—"इस चक्कर में न पड़िये बाबू जी ! यह जीवन है और जीवन ज़िन्दा दिली का दूसरा नाम

है।"

फिर शरबती आई, झूमती झामती हुई। उसके हाथ में वही कटोरदान था और गिलास, स्टूल पर रखते हुए उसने कहा—"और कोई सेवा ?"

मैंने मुस्कुराते हुए कहा—"सेवा होगी तो तुम्हारे सिवा और किसी को याद नहीं किया जाएगा।"

वह खड़ी हो गई। कहने लगी—"उधर तो आप पसन्द की बातें कर रहे थे, हम से प्रसन्न होते तो दूसरों की चर्चा क्यों करते ?"

मैंने मुस्कुरा कर कहा—"तो यह बात है ? तुम्हें केवल भ्रम हुआ है वरना हम तो तुम्हारे सिवाय किसी और की शक्ल देखना भी नहीं चाहते।"

शरबती कुर्सी पर बैठ गई। कहने लगी—"बाबू जी आप नहीं जानते मैं कितनी दुखी हूँ।"

"दुखी ?" मैंने आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा—"तुम क्योंकर दुखी हो। इतनी कमाई करती हो फिर भी दुखी ? यह बात मेरी समझ में नहीं आई।"

शरबती मौन हो गई। उसकी आँखों से आँसू बहने लगे। आँखें पोंछते हुए उसने कहा—"यह आप क्या जानें, मेरी दशा तो दासों से भी बुरी है।"

शरबती ने इतने शब्द कहे और फिर वापस जाते हुए उसने कहा "फिर आऊंगी तो सब हाल बताऊंगी।"

मैं सोचता रह गया। महन्त की सुन ली थी अब शरबती की कहानी सुननी बाकी थी। महन्त से कुछ प्राप्त न हुआ किन्तु शरबती से बहुत कुछ मालूम होने की आशा थी।

शरबती आई तो रात हो चुकी थी और मैं कल की तरह सोने का प्रयत्न कर रहा था। वह दूध का गिलास लाई थी। मैंने दूध पीया और उसने यह कहते हुए किवाड़ बन्द कर दिये "कि दुष्टराज सो गया है अब कोई भयभीत होने की बात नहीं है।"

कुर्सी पर बैठते हुए उसने एक बार फिर आँसू पूंछे।

उसने बताया कि वह महन्त की पत्नी नहीं, बल्कि रखेल है। शरबती का पिता महन्त का श्रद्धालू था और यात्रा के लिये आते समय प्रायः इसी अखाड़े में ठहरा करता था। गरीब आदमी था इसलिये महन्त जी पर उसे बहुत अधिक श्रद्धा थी। इस महन्त जी को शरबती के समीप आने का अवसर मिल गया। शरबती को अनेक सुनहरे बाग दिखाए गये और एक दिन ऐसा आया जब शर्म और हया शरबती के जीवन में इस प्रकार बाधक हुई कि वह कुछ इन्कार न कर सकी और महन्त जी के चुंगल में फंस गई। उसके पिता को ज्ञात हुआ तो महन्त जी ने उसे विष देकर समाप्त करा दिया। महन्त जी ने उसे अपनी पत्नी बनाने का वचन दिया था किन्तु पत्नी की बजाए उसे उनकी बहिन के रूप में रखेल बनकर रहना पड़ा। और रखेल तक ही सीमित नहीं रही बल्कि महन्त जी ने उसे शरीर बेचने पर भी विवश कर दिया।

शरबती ने बताया कि उसे रोटी कपड़े के सिवा कुछ नहीं मिलता। यात्री आते हैं, महन्त जी उन्हें अपने चक्कर में फाँस लेते हैं और इसके पश्चात जो कुछ प्राप्त होता है वह महन्त जी ऐंठ लेते हैं।

मैंने पूछा—"इस अखाड़े में और कितनी लड़कियाँ हैं ?"

शरबती ने बताया कि यहाँ तो कोई अधिक लड़कियाँ नहीं, छः सात ही हैं परन्तु आवश्यकता हो तो दूसरे अड्डों से प्राप्त कर ली जाती हैं।"

"तो इसका मतलब यह है कि यहाँ भी कई अड्डे हैं ?"

"क्यों नहीं" शरबती ने कहा—"आप देखेंगे तो चकित रह जाएंगे।"

मैं काँप उठा। मैंने कहा—"मुझे इतनी आशा तो नहीं थी परन्तु तुमने मुझे बहुत कुछ बता दिया। मेरी आँखें खुल गई हैं।"

शरबती मौन थी। उसने आँसू पोंछते हुए कहा—"आप पुलिस के अफ़सर मालूम होते हैं। क्या इस बूढ़े महन्त को गिरफ़्तार नहीं करा सकते ?"

मैं अपना भेद क्या खोलता। क्योंकर बताता कि मैं महन्त से भी अधिक पतित आत्मा हूँ। तब भी मैंने तकिया उठाया और चालीस रुपये के और नोट निकालते हुए कहा—"यह ले जाओ और तनिक ध्यान रखो। यदि तुम यहाँ से निकलना चाहो तो मैं पूर्ण रूप से सहायता करूंगा।"

वह हाथ जोड़कर खड़ी हो गई। मेरे पाँव छूते हुए उसने कहा—"मैं आप को बड़े भाई की भाँति समझती हूँ, आप जो ठीक समझें करें। मैं तो इस बदमाश के चुंगल से निकलने के लिए हर समय तैयार हूँ।"

शरबती चली गई परन्तु थोड़ी देर बाद ही फिर वापस आ गई और कहने लगी—"गिरफ़्तार कराने का अब मौका है। नीचे दो और लड़कियाँ आई हुई हैं और महन्त जी उनका सौदा कर रहे हैं।"

मैं मौन हो गया और सोचने लगा। यदि मैं कोई ऐसी चेष्टा करूं तो सम्भव है कि अपना ही भेद खुल जाए और कोई नई विपत्ति खड़ी हो जाए।

शरबती उत्तर की प्रतीक्षा में थी।

मैंने कहा—"तुम इसकी परवाह न करो पहले तुम्हें छुड़ा लूं इसके बाद कोई दूसरा काम करूंगा।"

शरबती फिर हाथ जोड़ कर जाने लगी तो मैंने कहा—"ज़रा ठहरो!"

शरबती वापस आ गई। कहने लगी—"कहिये, अब क्या आज्ञा है?"

मैंने कहा—"यदि तुम चाहो तो कल ही तुम्हें यहाँसे ले जाऊं।"

उसने कुछ सोच कर कहा—"मैं तैयार हूँ।"

कार्यक्रम तैयार हो गया। मैंने कहा—"मैं कल दोपहर को यहाँ से चला जाऊंगा, तुम स्टेशन पर छः बजे शाम को पहुँच जाना। रेल गाड़ी की बजाए मोटर पर देहरादून रवाना हो जाएंगे और किसी को कानों कान खबर भी नहीं होगी।"

: दस :

फिर लाहौर में

दूसरे दिन मैं तो सवेरे ही देहली जाने का बहाना करके अखाड़े में से निकल गया, शरबती कोई पाँच बजे के लगभग आई और देहरादून जाने की बजाए हम एक टैक्सी पर मथुरा के लिये चल दिये।

शरबती बहुत चालाकी से अखाड़े से निकली थी। उसने महन्त को चकमा दिया था कि एक दिलफैंक उसे कनखल में बुला रहा है। महन्त जी चकमे में आ गये और शरबती आँख बचाती हुई मेरे पास आ गई।

मथुरा भी मन्दिरों का नगर है। रात को वहाँ पहुँचे और पूछते हुए विश्रामघाट पर पहुँचे। एक मल्लाह ने बताया कि यहाँ भगवान् कृष्ण विश्राम किया करते थे इस लिए इस घाट का नाम भी विश्रामघाट हो गया था। उस मल्लाह की सहायता से हमने बाज़ार में जाकर एक होटल में कमरा लिया और आराम किया।

सुबह उठकर जमना जी में स्नान करने के बाद मन्दिरों के दर्शन किये। कोई पच्चीस रुपये खर्च किये पूजा और भेंट पर। शाम को नौका लेकर जमना की सैर की।

शाम का वह दृश्य बहुत ही सुहावना था। कितने ही स्त्री पुरुष और बच्चे नौकाओं में घूम रहे थे। उनमें से कई टोलियों में थे और स्तोत्र पढ़ रहे थे। कई टोलियों के पास ढोलकें थीं और वह उन्हें बजा-बजा कर दोहे तथा गीत गा रहे थे।

रात को होटल में गये और भोजन करने के बाद सोने लगे तो शरबती ने मुझ से कहा—"हमें सुबह से पहले यहाँ से चले जाना चाहिये।"

मैंने पूछा तो उसने सकुचाते हुए बताया "कि होटल में एक यात्री उसे पहचानता है और जब हम भोजन कर रहे थे तो वह हमें घूर-घूर कर देख रहा था।

मैंने फिर पूछा तो उसने हिच-किचाते हुए बताया कि वह प्रायः हरिद्वार आया करता है और महन्त जी के पास ही ठहरता है।"

मैंने कहा—"ठहरा करे, अब तो तुम मेरे पास हो किसी का भी साहस नहीं कि तुम पर उंगली उठा सके।"

शरबती भय-भीत थी। कहने लगी—"आप नहीं जानते इसे। इस का नाम राजकमल है। इसने कई लड़कियों को भगाया है। महन्त की एक लड़की को धोके से ले गया था किन्तु महन्त कुछ न कर सका क्योंकि यह व्यक्ति महन्त के सम्पूर्ण रहस्यों से परिचित है।"

फिर शरबती ने बताया कि इस व्यक्ति ने भोपाल से एक लड़की कान्ता को बहका कर ले आया था। कान्ता इन्दौर में कपड़े के कारखाने में काम करने वाले एक नौकर की घरवाली थी। उसे भगाकर लाने के बाद उसके मामा ने उसे उज्जैन में एक व्यक्ति कालू के पास बेच दिया। कालू ने कुछ दिन उसे अपने

पास रखा और इसके बाद राजकमल के हवाले कर दिया। राज कमल की एक अपना पत्नी भी है जिसे वह बम्बई से भगा कर लाया है। और अब कान्ता के बेचने का प्रयत्न कर रहा है।

मैं खिल-खिला कर हंस पड़ा। मैंने कहा—"जो व्यक्ति स्वयं इतना अपराधी हो वह दूसरे का क्या बिगाड़ सकता है। उसे तो हम गिरफ्तार करा सकते हैं।"

शरबती को कुछ विश्वास हुआ। किन्तु वास्तविकता यह है कि उस रात न तो मुझे नींद आई और न शरबती को। दोनों अन्दर ही अन्दर भयभीत थे परन्तु उस भय को प्रकट करने से कतरा रहे थे।

सुबह शरबती नहाने के लिए गई तो एक अधेड़ आयु के मनुष्य ने जिस की एक आँख गायब थी, 'नमस्ते' कह कर कमरे में प्रवेश किया और बहुत ही निस्संकोच भाव से चारपाई पर बैठ गया और कहने लगा—"मेरा नाम राजकमल है। आप से एक आवश्यक काम है।"

नाम सुन कर मैं चौंक पड़ा। उस का साहस मेरे लिए बहुत ही आश्चर्य जनक था। मैंने पूछा—"कहिये, मैं आप की क्या सेवा कर सकता हूँ ?"

वह मुस्कुराने लगा और फिर पूछे बग़ैर मेज़ पर से सिग्रेट उठा कर सुलगाते हुए उसने कहा—"जानते हो यह लड़की कौन है ?"

मैंने कहा—"आप किस के विषय में कह रहे हैं ?"

उसने ज़ोर से ठहाका लगाया और कहने लगा—"शरबती के बारे में ! जो आप के साथ हरिद्वार से भाग कर आ गई है।"

मेरा मुख पीला पड़ गया। मैंने गम्भीरता से कहा—"यह आप क्या कह रहे हैं। शरबती भाग कर नहीं आई, न ही उसे भगाया गया है बल्कि वह एक गुंडे के चुंगल से निकल कर मेरे साथ आई है।"

"बहुत खूब!" उसने मुस्कुराते हुए कहा—"तो जैसे आप भोली-भाली लड़कियों को इसी प्रकार बदमाशों के चुंगल से छुड़ाने का काम करते हैं।"

एक क्षण रुक कर उसने मुझे सिर से पाँव तक देखते हुए कहा—"आप सरकार के कोई बड़े अफ़सर हैं क्या? आप यहाँ किस उद्देश से आए हैं?"

मैंने कहा—"मैं न तो सरकारी अफ़सर हूँ, न ही नौकर। यहाँ आने का उद्देश पूछने वाले आप कौन होते हैं?"

राजकमल ने सुलगता हुआ सिग्रेट मेज़ पर रख दिया और कहने लगा—"मैं कौन हूँ और क्या कर सकता हूँ, यह तो आप को इसी समय मालूम हो सकता है परन्तु उस समय आप पछताएंगे। इसी लिये आपको मित्रता के नाते सलाह देने के लिए आया हूँ।"

मैं काँप उठा। अपनी वास्तविकता का अन्दाज़ा करके मेरा मुख पीला पड़ गया और सब अकड़ फूं भूल गया।

मैंने कहा—"आप उठ क्यों खड़े हुए? तनिक बैठिये तो! चाए मंगाऊं क्या?"

उसने गम्भीरता से कहा—"यह चकमा किसी और को देना, मैं इन बातों के चक्कर में नहीं फंसता। अभी पुलिस को सूचना देकर सब ठीक कर देता हूँ।"

वह बाहर जाने लगा तो मैं विकल हो गया। तुरन्त बिस्तर

से उठते हुए मैंने उसे दरवाज़े पर पकड़ लिया और अनुनय विनय करते हुए अन्दर ले आया और उसकी खुशामद करने लगा।

राजकमल इसके सिवा किसी बात पर राज़ी ही नहीं होता था कि शरबती को उसके हवाले कर दिया जाए। इधर मेरे लिए यह बहुत कठिन था क्योंकि मैं उसको सहायता का वचन दे चुका था।

राजकमल ने यह दशा देखी तो वह कहने लगा—"यदि यही बात है तो मेरा रास्ता साफ़ है।"

फिर कुछ देर मौन रहने के पश्चात उसने कहा—"शाम तक निर्णय कर लो। यदि फिर भी ज़िद की तो मैं पुलिस को सूचना दे दूंगा।" यह कहकर उसने नमस्ते की और तेज़ी से बाहर निकल गया।

मुझे बहुत चिन्ता हुई, बहुत भयभीत हुआ। सोचने लगा कि अब क्या करना चाहिये, कि शरबती ने कमरे में प्रवेश किया। कहने लगी—"आप अभी तक नहाए नहीं क्या?"

मैंने चौंक कर कहा—"नहीं तो।"

वह कपड़े बदलने में तल्लीन हो गई तो सोचने लगा कि अब इस विपत्ति से किस प्रकार छुटकारा प्राप्त किया जाए। मुझे राजकमल से इतना भय नहीं था जितना कि राजकमल की इस बात से कि यदि मेरी वास्तविकता प्रकट हो गई तो लाहौर से भागने का उद्देश नष्ट हो जाएगा और मैं ऐसे चक्कर में फंस जाऊंगा कि छुटकारा प्राप्त करना कठिन हो जाएगा।

कोई रास्ता भी तो दिखाई नहीं देता था। शरबती को राज कमल के हाथों सौंप दूं तो चारित्रिक पतन, नहीं सौंपूं तो गिरफ़-

तारी की आशंका।

मैंने सिग्रेट उठाया और धूवें के कश छोड़ने लगा।

शरबती कपड़े बदल कर आ गई थी। कहने लगी—"अब क्या विचार है आप का ? आप तो बिस्तर से उठने का नाम ही नहीं लेते।"

मैंने मुस्कुराते हुए कहा—"तुम मन्दिर से हो आओ, मैं भी तैयार हो जाता हूँ।"

शरबती मन्दिर चली गई तो मुझे एक रास्ता सूझा। मैंने बिस्तर आदि वहीं छोड़ा और नकदी वग़ैरह लेकर चुप-चाप बाहर निकल गया। देहरादून जाने वाली बस तैयार थी उसमें सवार हुआ और शरबती को उसके भाग्य पर छोड़ कर भग्न-हृदय से देहरादून के लिए चल दिया।

शरबती का क्या बना ? वह राज कमल के फन्दे में फंस गई या महन्त के, यह मुझे मालूम नहीं—परन्तु इस घटना की स्मृति मेरे मस्तिष्क से आज तक नहीं निकली। यह एक और अपराध था जो मैंने विवशता की दशा में किया।

देहरादून एक सुन्दर शहर है। दो दिन वहाँ ठहरा और इसके बाद मंसूरी चला गया। मंसूरी से चल कर देहली पहुँचा और वहीं से कानपुर चला गया। एक दो दिन कानपुर रहने के बाद लखनऊ पहुँचा और इसके बाद फिर लाहौर के लिए चल दिया।

लाहौर रेलवे स्टेशन पर उतरा तो बहुत भयभीत था। आशंका थी कि गिरफ़्तार हो जाऊंगा, इसलिए शाम की गाड़ी से आया था। ताँगे में बैठा और गढ़ी शाहू की ओर चल दिया।

जब फाटक में प्रवेश किया तो मेरा हृदय धक-धक कर रहा

था। कौशल्या के कमरे में से प्रकाश निकल रहा था। मैं सीधा उस ओर गया। दरवाज़े पर खड़ा हुआ। कौशल्या मिट्टी के दीपक के प्रकाश में सिलाई का काम कर रही थी। मुझे देखते ही चौंक पड़ी और चारपाई से उतर कर मेरे पास आ गई। कहने लगी—"आओ !"

मैंने कमरे के अन्दर कदम रखा और धीरे से पूछा—"डर की कोई बात तो नहीं है ?"

उसने ज़ोर से ठहाका लगाया। कहने लगी—"आप तो यूं ही भाग गये, यहाँ कुछ भी नहीं हुआ। चिन्ता का कोई कारण ही नहीं। आप इतने दिनों बाहर रहे हमें कोई पता ही नहीं था वरना तार देकर बुला लेते।"

मैंने सन्तोष का साँस लिया। चारपाई पर बैठ गया और अपना कोट उतारते हुए मैंने पूछा—"सच कह रही हो ना ? कहीं गिरफ़्तार होने की आशंका तो नहीं ?"

वह फिर खिल-खिला कर हंसने लगी "आप भी अजीब व्यक्ति हैं। मैं आपके सामने कभी झूठ बोल सकती हूँ ? गिरफ़्तार होने की बात होती तो मैं सुरक्षित रह सकती थी क्या ?"

मेरे और समीप आते हुए उसने कहा—"आपके लिए चाए का प्रबन्ध करती हूँ।"

कौशल्या चाए तैयार करने लगी और साथ ही मेरी अनुपस्थिति में जो घटनाएं घटित हुई थीं वह भी बताने लगी।

उसने बताया कि मेरे जाने के दिन जो छापे पड़े थे उसके अतिरिक्त और कोई गिरफ़्तारी नहीं की गई। गिरफ़्तार होने वाले व्यक्तियों में से कई व्यक्ति सबूत न मिलने की वजह से छूट कर आ गये हैं। दूसरों के विरुद्ध मुकदमे चलेंगे परन्तु सफलता की कोई आ-

शा नहीं। क्योंकि अफ़सरों को ठीक गवाहियाँ नहीं मिलतीं।

कौशल्या का पति भी इसी बीच में आ गया। मुझे देखा तो विह्वल होकर लिपट गया। कहने लगा—"आप ने तो कमाल कर दिया। इतने दिन अनुपस्थित रहे, हम तो बहुत व्याकुल रहे।"

व्याकुलता की बात सत्य थी क्योंकि मेरे कारण पति पत्नी आनन्द का जीवन बिता रहे थे। मेरी अनुपस्थिति के कारण इन से अधिक और किसी को हानि नहीं पहुँच रही थी।

चाए पीने के बाद बहुत देर तक मनोरंजक वार्तालाप होता रहा और भविष्य का कार्यक्रम बनता रहा। हमने निश्चय कर लिया कि पहले की भाँति ही फिर अपना काम प्रारम्भ कर देंगे।

दूसरे दिन माई मिली और सावित्री भी। उन्होंने भी मुझे देख कर प्रसन्नता प्रकट की। सावित्री अब कुछ मोटी हो गई थी। मैंने उसे कहा तो खिल-खिलाकर हंसने लगी।

फिर वही गुलशन रेस्टोरेन्ट, वही फ़ैज़बाग़ के अड्डे, मालरोड के पुराने होटल, शालामार बाग़ और लारेन्स गार्डन। दुकान फिर चमक उठी। इतना होने पर भी मैंने यह चतुराई की कि सारी सौदेबाज़ी दूसरों के नाम से करने लगा। कभी 'माई' की मार्फ़त और कभी लीला की मार्फ़त। वैसे उन्हें केवल कमीशन ही मिलती थी और आमदनी का बहुत बड़ा भाग मेरे पास ही रहता था

शाही मुहल्ले के एक दलाल खुदाबख़्श से उन्हीं दिनों मेरी जान पहिचान हो गई थी और मैं प्रायः उसके पास आया जाया करता था। खुदाबख़्श का सम्बन्ध देहली, भरतपुर, गवालियर

झाँसी, लखनऊ, कानपुर और कई दूसरे शहरों के दलालों से था। ये व्यक्ति एक स्थान से किसी स्त्री को बहकाकर या खरीद कर ले आते और दूसरे स्थान पर पहुँचा देते। खुदाबख्श ने मुझे भी इस गिरोह में सम्मिलित कर लिया था।

चंगड़ मुहल्ले में खुदाबख्श ने मुझे एक मकान दिला दिया। अब मैं वहाँ नाम बदल कर रहने लग गया था और वहाँ के कुछ व्यक्तियों से सम्बन्ध स्थापित कर लिये थे।

मेरे मकान पर जो महतरानी कूड़ा करकट उठाने आया करती थी, उस का नाम था गुलाबो। मैंने उसे देखा तो पागल सा हो उठा और उसे अपने साथ मिलाने का प्रयत्न करने लगा।

गुलाबो की आयु कोई सोलह सत्रह वर्ष की होगी। मैंने पहले तो उसे तीसरे चौथे दिन पाँच दस रुपये देने आरम्भ किये और जब वह मेरे जाल में फंस गई तो एक दिन रात को उसे बुला कर गढ़ीशाहू के मकान में ले गया।

गुलाबो घबराई नहीं बल्कि मेरे घर आकर बहुत प्रसन्न हुई। मैंने उसे विवाह करने का झाँसा दिया था। उस झाँसे ने उसका मस्तिष्क आकाश पर चढ़ा दिया था। वस्त्र बदले तो सौंदर्य और भी निखर आया। होटलों में जाने लगी तो चाल-ढाल पर भी प्रभाव पड़ने लगा। कोई विश्वास नहीं कर सकता था कि वह महतर की लड़की है। मैंने उसे अपनी पत्नी प्रकट किया और मिलने जुलने वाले भी यही विश्वास करने लगे।

पहली बार उसे फ़ैज़ बाज़ार के अड्डे पर ले गया तो वह घबराई, किन्तु धीरे-धीरे वह भी उसी रंग में रंग गई जिस में कौशल्या और सावित्री रंगी हुई थीं। कहाँ कूड़ा कर्कट उठाने के दिन और कहाँ दो चोटियाँ रखने और विस्की के जाम लंढ़ाने

का वातावरण।

खुदाबख्श ने देखा तो कहने लगा—"ऐसा मालूम होता है कि आकाश से चन्द्रमा उतर आया है।" और फिर उसके भविष्य का सौदा होने लगा।

खुदाबख्श दो हज़ार दे रहा था और मैं तीन हज़ार रुपये की मांग कर रहा था। कोई निर्णय नहीं हो पाया तो हम अलग हो गये।

दूसरे दिन मैंने एक और गाहक ढूंढा और गुलाबो को तीन हज़ार रुपये में बेच दिया। रुपये कौशल्या के सुपुर्द कर दिये ताकि वह अपने पास रखे। उसी शाम को मैं मकान से बाहर निकल रहा था कि एक मूंछों वाला व्यक्ति मेरे सामने आकर खड़ा हो गया। मुझे देख कर कहने लगा—"तुम्हारा नाम क्या है?"

मैंने कहा—"नानक!"

उसने मुझे सिर से पाँव तक ध्यान से देखा और फिर कहने लगा—"तुम्हें चौधरी साहब ने बुलाया है।"

मैंने कहा—"कौन चौधरी साहब? और मुझे कहाँ जाना है?"

"पुलिस की चौकी पर।" उसने मुझे घूर कर देखते हुए कहा—"तुम से एक आवश्यक काम है उनको।"

मेरे पाँव तले से ज़मीन निकल गई। काटो तो शरीर में लहू नहीं था। परन्तु इन्कार कर नहीं सकता था, थाने चल पड़ा।

पहले तो मिली कुर्सी, परन्तु बाद में मुझे खड़े होने की आज्ञा दी गई एक अपराधी की भाँति। अपराध यह था कि मैंने

एक लड़की को बहका कर रखा हुआ है और उसे बेचने का प्रयत्न कर रहा हूँ। मैंने इन्कार किया तो खुदाबख्श सामने आ गया—"हज़ूर खुदा की कसम खाकर कहता हूँ परसों यह उस लड़की को मेरे पास लेकर आया था।"

मैंने अपने आप पर काबू पाते हुए कहा—"यह सर्वथा असत्य है। मैं तो इस व्यक्ति को जानता ही नहीं।"

परन्तु सुने कौन ? रात भर हवालात में रहा किन्तु मैंने अपराध स्वीकार नहीं किया, कुछ बताया नहीं। बहुत धमकियाँ मिलीं, बहुत गालियाँ मिलीं किन्तु मैंने अपना रवैया न बदला। अन्त में चौधरी साहब ने यह कहकर छोड़ दिया "कि यदि अपराध सिद्ध हो गया तो आयु पर्यन्त कैद काटनी पड़ेगी।"

घर आकर ज्ञात हुआ कि 'माई' ने किस प्रकार मुझे छुड़ाया है और उसकी कृपा से कोई भी व्यक्ति आसानी से मुझ पर हाथ नहीं उठा सकता। उधर खुदाबख्श ऐसा फंसा और उसके दोष इस प्रकार प्रकट हुए कि उसे जेल जाना पड़ा। न्यायालय में सिद्ध हो गया कि वह बुर्दा फ़रोश है और कई लड़कियों ने उसके विरुद्ध गवाहियाँ भी दीं।

: ग्यारह :

आत्मा की जागृति

अब यह बताने की आवश्यकता नहीं कि मैं क्योंकर सज़ा पाने से बचा—'माई' की चालाकी आड़े आई या यह कोई दूसरा कारण था। वस्तुतः छूटने के बाद मुझे भय मालूम होने लगा कि आज नहीं तो कल किसी भयानक विपत्ति का शिकार हो जाऊंगा। क्योंकि मैं ज़िम्मेवार अफ़सरों की निगाहों में अब खटकने लगा हूँ। और यह स्पष्ट है कि जब किसी व्यक्ति की यह अवस्था हो जाए तो वह एक न एक दिन जेल की हवा अवश्य खाता है।

सलाह मशवरा करना चाहता था अपने भविष्य के विषय में। परन्तु किस से करता, कोई अपना भी तो नहीं था। वातावरण उन व्यक्तियों का था जो मंजे हुए बदमाश थे। जिन की आत्माएं मुर्दा हो चुकी थीं। जिन में कोई सद भावना शेष नहीं रही थी।

लोरेंग में एक टेबल पर अकेले बैठे हुए चाए पी रहा था कि भविष्य की कल्पना करके मेरी आत्मा काँप उठी। चाए बे मज़ा हो रही थी।

मैंने देखा—सामने मेज़ पर अकेले बैठे हुए एक महानुभाव

के पास एक फैशनेबल स्त्री एक पुरुष के साथ जो उसका पति ही मालूम होता था आकर बैठी। पति ने हाथ मिलाया, चाए के लिए आर्डर दिया और फिर उस स्त्री को छोड़कर गायब हो गया।

मुझे कुछ जिज्ञासा उत्पन्न हुई। मैंने समय बिताने के लिए और चाए मंगवाई, और उनकी बातें सुनने लगा।

वह स्त्री किसी भले घर की बहू मालूम होती थी परन्तु खर्चे पूरे न होने की शिकायत कर रही थी। कह रही थी कि उसके पति को महीनों की दौड़धूप के बाद भी कोई काम नहीं मिला। और टेबल पर बैठा हुआ साहब सिगार के कश लगाते हुए उसे साँत्वना दे रहा था कि अब यह कठिनाई दूर हो जाएगी। उसकी बातों में सहानुभूति का कण मात्र भी नहीं था और उसकी भूकी आँखें प्रकट कर रही थीं कि सहानुभूति की आड़ में शिकार खेला जा रहा है।

जब चाए पीने के बाद दोनों हाथ मिलाए हुए बाहर निकले तो मुझे क्रोध आ गया। यदि उस समय मैं अपनी भावनाओं पर काबू न पा लेता तो सम्भवतः मैंने दोनों को गोली का निशाना बना दिया होता और स्वयं भी फाँसी के तख्ते पर लटका दिया गया होता।

आप कहेंगे कि मैंने उसी समय जीवन की धारा बदल क्यों न ली ? उस रास्ते से शिक्षा प्राप्त क्यों न की। उत्तर कुछ सूझता ही नहीं। सम्भवतः मेरे भाग्य में बुरे दिन लिखे थे। सम्भवतः यह वातावरण की बेबसी का परिणाम था कि मैं सब कुछ देखने के बाद भी अन्धा ही रहा। सब कुछ सुनने के बाद भी बहरा ही रहा और उनसे अच्छी शिक्षा प्राप्त करने की बजाए उन्हें

अपने व्यापार को विस्तृत करने में प्रयोग करने लगा।

तीसरे दिन उन्हीं साहब से लारेन्स गार्डन में भेंट हुई। भेंट क्या हुई मैंने स्वयं ही अपना परिचय दिया और बेकारी का रोना रोते हुए कुछ इस प्रकार से नक्शा खेंचा कि उन्होंने अपने विषय में सब कुछ बता डाला। मुझे अवसर मिला कि जेब हल्की करने की युक्ति आरम्भ कर दूं।

सावित्री उनके घर भेजी गई। उसने अपने आप को नानक चन्द की पत्नी प्रकट किया और अपने 'पति' के लिए सहायता करने की विनती की। सावित्री के आँख नाक, चेहरे की बनावट, उसके बोल-चाल का ढंग और उसके फैशन का साहब पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ा।

प्रथम भेंट ने ही बहुत कुछ क्षेत्र तैयार कर दिया था। प्रीति-भोज ने सोने पर सुहागे का काम किया और इस प्रकार हम उसकी आँखों में धूल डालने में सफल हो गये। और फिर यह भी एक मनोरंजन बन गया। सावित्री और कौशल्या श्वेत-वस्त्र धारी भद्रपुरुष नानक चन्द की पत्नी का सफलता के साथ अभिनय करने लगीं। कई बड़े-बड़े मनुष्य हमारे 'सहायक' बन गये। एक अजीब दुविधा थी मैं आज तक निर्णय न कर सका कि हम उन्हें मूर्ख बनाते थे या वो हमें।

इस बीच में मुझे झाँसी जाने का संयोग हुआ। वहाँ बम्बई के एक व्यक्ति विट्ठल से भेंट करने का अवसर मिला। विट्ठल के साथ एक साधू भी था। वह दिखावे को तो दातुन बेचा करता था परन्तु वास्तव में दोनों की मिली भगत थी। ये दोनों व्यक्ति झाँसी, गवालियर और बम्बई से लड़कियों को बहका कर लखनऊ, कानपुर और देहली में ले जाते और उन्हें

बदमाशों के हाथों बेच देते। मैंने अपनी आँखों से देखा कि उन-होंने देहली के एक बदमाश मुसद्दीलाल के हाथों एक लड़की को आठ हज़ार रुपये में बेचा। उस लड़की का नाम तो याद नहीं रहा किन्तु इतना याद है कि वह बहुत दुखी थी और व्यभि-चार का पथ ग्रहण करने से इन्कार कर रही थी।

सौदा हो जाने पर विट्ठल ने कहा—"आप भी कोई माल खरीदना चाहते हैं क्या ?"

मैंने रज़ामन्दी प्रकट की।

विट्ठल ने कहा—"आप बम्बई चलें, वहाँ एक नहीं दर्जनों लड़कियाँ पेश की जा सकती हैं।"

विट्ठल का मकान काठियावाड़ बाज़ार में था। मैं वहाँ पहुँचा तो उसने बहुत ही अच्छा बर्ताव किया।

अतिथि सत्कार के संकोच का प्रदर्शन करने के पश्चात उसने कहा—"कहाँ तक खर्च करना चाहते हो ?"

मैंने कहा—"यह तो अपनी रुचि का प्रश्न है। जैसा माल वैसा दाम।"

वह मुस्कुराकर कहने लगा—"यह तो मैं प्रथम परिचय में ही समझ गया था। आप लाहौर से पधारे रहे हैं और लाहौर के व्यक्ति ही माल की कदर करना जानते हैं।"

उसने ताली बजाई और एक लड़की जिसने नीली सी गंदी धोती जो घुटनों से ऊपर पहुँची हुई थी पहन रखी थी, सामने आ गई। उसके रूखे बाल, बे रौनक आँखें और गन्दे-गन्दे से पाँव प्रकट करते थे कि बहुत ही दुखी लड़की है और केवल गरीबी का शिकार होने के कारण डाकुओं के हवाले की जा रही है।

विट्ठल कहने लगा—"है तो पाँच सौ की चीज़ परन्तु आप

नये गाहक हैं इस लिए दो सौ में ही काम बन जाएगा।"

तात्पर्य यह था कि मैं आग्रह करूं तो सौ डेढ़ सौ में ही सौदा हो सकता था। मैंने आँख के इशारे से बताया कि यह मेरा स्टैन्डर्ड नहीं, कोई और नमूना दिखाइये।

वह गई और दूसरी आ गई। गोरा सा रंग, मदभरी आँखें, बाल कुछ चमकीले से, ऐसा ज्ञात होता था कि कोई महाराष्ट्र की स्त्री है। मैंने उसे देखा—आँखें चार हुईं परन्तु उसकी आँखें लज्जावश झुक गईं। विट्ठल कहने लगा—"इसे हीरा समझो हीरा। जहाँ जाएगी प्रकाश और चकाचौंध उत्पन्न कर देगी।"

मैं उसे गौर से देखता रहा। विट्ठल ने बताया कि पाँच सौ में सौदा हो जाएगा। मैं उस सौदे के लिए तैयार था परन्तु जिज्ञासा के कारण मैंने कहा—"कोई और दिखाइये।"

विट्ठल झुंझला उठा। सम्भवतः मैं उसकी दृष्टि में कोई अनोखा खरीदार था या मुझ पर उसे सन्देह हो गया था। लड़की को अन्दर भेजकर उसने कहा—"महाशय मालूम नहीं आप चाहते क्या हैं? अपने पास तो नव रतन हैं नव रतन, परन्तु आप उनका मूल्य भी चुका सकेंगे या नहीं?"

मैंने जेब से नोटों का पुलन्दा निकालकर दिखाते हुए कहा—"तो जैसे आप हमें कुछ समझे ही नहीं थे।"

नोटों का पुलन्दा देखकर उसकी बाँछें खिल गईं—"क्यों नहीं।" उसने हंसते हुए कहा—"क्षमा कीजिये, वास्तव में मुझे सन्देह हो गया था।"

मैंने कहा—"किस बात का?"

"मैं समझता था कि सम्भवतः आप पुलिस के व्यक्ति हैं और किसी चक्कर में फंसाना चाहते हैं।" उसने गम्भीरता से

कहा—"तो आइये आप को बढ़िया से बढ़िया नमूने दिखाऊं।"

यह कहकर वह उठा और कमरे के अन्दर चला गया। मैं भी उसके पीछे पीछे हो लिया। उसके नौकर ने यह कहते हुए अन्दर से दरवाज़ा बन्द कर लिया कि "सावधानी रखना अत्यन्त आवश्यक है।"

उस कमरे के पश्चात् हम एक दूसरे कमरे में गये। विट्ठल के नौकर ने एक बिजली का बटन दबाया और प्रकाश हो गया। दूसरी ओर दरवाज़ा खुला और एक लड़की नाचने की मुद्रा में सामने आ खड़ी हुई। कमरे में पांव रखते ही उसने कहा—"कहिये क्या आज्ञा है?"

विट्ठल ने उसे बैठ जाने का संकेत किया। वह बैठ गई। उस के शरीर से सुगन्धी की लपटें आ रही थीं। उसने केशों में फूलों का जूड़ा लगाया हुआ था। उसका शरीर दोहरा और आँखें मोटी मोटी थीं।

विट्ठल ने कहा—"यह गुजराती है अभी अभी आई है।" और एक क्षण के पश्चात उसने कहा—"केवल एक हज़ार लगेंगे, पसन्द हो तो ले जाइये।"

अब मैंने सौदेबाज़ी आरम्भ की।

विट्ठल पहले तो झुंझलाया इसके बाद उसने भी दुकान्दारी के ढंग से बातचीत की और अन्त में सात सौ रुपये में एक मनुष्य के जीवन के भविष्य का सौदा हो गया।

उसका नाम था कस्तूरीबाई। जब मैं उसे लेकर बोरी बंदर के एक होटल में पहुँचा तो उसने कमरे में प्रवेश करते हुए पूछा—"बाबू जी आप मुझ से धोका तो नहीं करेंगे?"

वह ज़मीन पर ही बैठने लगी तो मैंने उसे कुर्सी पर बिठा

दिया।

वह कहने लगी—"मैं बहुत दुखी स्त्री हूँ बाबूजी।"

मैंने उसे सिर से पाँव तक देखा और मुस्कुरा दिया।

मैंने कहा—"चाय पीओगी या विस्की ?"

"मैं दारू नहीं पीया करती बाबूजी।" उसने करुण स्वर में कहा—"कहाँ है 'सामान' मैं स्वयं बना देती हूँ चाय।"

एक फ़ैशनेबल स्त्री को इस सादगी से बात करते देखकर मुझे आश्चर्य हुआ। मैंने चाय का आर्डर दिया और पलंग पर तकिया लगा कर लेट गया।

चाय आई तो मैंने अन्दर से किवाड़ बन्द करते हुए कहा—"तुम्हारा नाम तो मालूम हो गया परन्तु तुमने यह नहीं बताया कि तुम कहाँ की निवासी हो ?"

काफ़ी हिचकिचाहट के पश्चात उसने बताया कि वह मद्रास की रहने वाली है। और जब उसने अपनी राम कहानी सुनाई तो उसे तो रोना ही था किन्तु मेरी आँखों से भी आँसू निकल आए।

उसने बताया कि उसका विवाह दस वर्ष की आयु में ही हो गया था। उसने विवाह से पूर्व पति का मुख देखा था परन्तु विवाह के पश्चात् आज तक नहीं देखा। उसका पति दो वर्ष पश्चात ही मर गया और वह एक दिन के लिये भी ससुराल न जा सकी और वह विधवा हो गई। उसका काम रह गया था घर के बर्तन साफ़ करना और कपड़े धोना। उसे न तो भोजन बनाने की आज्ञा थी, न ही किसी त्यौहार में सम्मिलित होने की।

जीवन बहुत ही संकट में बीत रहा था कि पिता के बाद माता जी का भी स्वर्गवास हो गया। वह चाची के टुकड़ों पर

पलने लगी। चाची उसे मारती पीटती। उससे वह बहुत तंग आ गई। मुहल्ले में एक बदमाश रहता था। उसने उसके प्रति सहानुभूति प्रकट की तो वह उसके चकमे में आ गई। उस बदमाश ने कुछ दिनों तक तो उसे अपने पास रखा इसके बाद एक और बदमाश के हाथों बेच दिया। जो उसे लेकर गोवा पहुँच गया। उस बदमाश ने एक अड्डा खोल रखा था जहाँ जूवेबाजी, शराब की बिक्री और व्यभिचार होता था। कस्तूरी को भी वही जीवन ग्रहण करने के लिये विवश किया गया। मारपीट के बाद वह सहमत हो गई। इस बीच में उसका वह गोवा वाला बदमाश बम्बई को अनुचित घड़ियाँ भेजने के अपराध में गिरफ़्तार कर लिया गया।

इसलिए अपने को बे सहारा पाकर कस्तूरी ने गोवा को छोड़ दिया और वापस मोरवी जाने लगी तो उसे एक स्त्री सुनेहरे बाग़ दिखा कर बम्बई ले गई। उसे अपनी बेटी की भांति रखने का वचन दिया था परन्तु ले गई बम्बई की गन्दी गली—फाकलेन्ड रोड पर। जहाँ उसे विवश किया गया कि वह चाँदी के सिक्कों के परिवर्तन में अपना शरीर बेचे। कस्तूरी तंग आ गई उस जीवन से—और आखिर को उसी अड्डे में आने वाले एक गुजराती नवयुवक के साथ भाग निकली। उसने उसे तीन चार महीने सुख से रखा परन्तु जब उसके माता-पिता को सूचना मिली तो वह उनके भय से उसे एक दिन विट्ठल के पास बेच गया। तब से वह विट्ठल के पास ही है।"

मैंने पूछा—"विट्ठल क्या काम करता है और लड़कियाँ कहाँ से लाता है?"

कस्तूरी रो रही थी। उसने बालों में लगा हुआ फूलों का जूड़ा

उतार फैंका और कहने लगी—"यही लड़कियों का क्रय विक्रय करता है। उसका भाई फाकलेन्ड रोड पर एक अड्डा चला रहा है। लड़कियों के क्रय विक्रय के अतिरिक्त उन्हें अड्डे पर भी बिठाया जाता है।"

जीवन में पहली बार एक दुखित स्त्री की राम कहानी से मैं प्रभावित हुआ था। पहली बार मैंने सच्चे हृदय से अनुभव किया कि मुझे एक दुखी स्त्री से सहानुभूति भी करनी चाहिये। परमात्मा से अपने अपराध क्षमा करवाने के लिए, सौदे बाज़ी की नीयत से नहीं बल्कि मानवीय सहानुभूति की भावना वश—मैंने निश्चय किया कि मैं कस्तूरी की सहायता करूंगा।

मैंने उसके आँसू पूंछे और कहा—"अब तुम क्या करना चाहती हो ? यदि तुम चाहो तो जहाँ इच्छा हो जा सकती हो, मुझे इसमें तनिक भी आपत्ति नहीं होगी ?"

वह मौन हो गई। सम्भवतः उसे यह बात-चीत बहुत अनोखी मालूम होती थी।

मैंने पूछा—"मौन क्यों हो, तुम्हारी क्या इच्छा है ?"

उसने आँसू पोंछते हुए कहा—"आपने तो मुझे खरीदा है आपके रुपये व्यर्थ जाएंगे।"

मैं खिल-खिलाकर हंस पड़ा। मैंने कहा—"तुम इसकी चिन्ता मत करो। स्त्री का शरीर तो रुपयों से खरीदा जा सकता है परन्तु आत्मा नहीं। मैं तो तुम्हारे शरीर का मालिक बनना चाहता हूँ न कि आत्मा का। तुम जो चाहो करने के लिए तैयार हूँ।"

वह मेरे पाँवों पर गिर पड़ी और फूट-फूट कर रोने लगी। मैंने उसे उठाया और सहृदयता से सांत्वना देने लगा।

कुछ देर मौन रहने के पश्चात् उसने कहा—"क्या सचमुच आप मुझ पर कृपा करना चाहते हैं ?"

मैंने मुस्कुराकर कहा—"तो क्या अब भी कोई सन्देह बाकी रह गया है ?"

वह फिर मौन हो गई। कुछ क्षणों के पश्चात् उसने कहा—"आप मेरा विवाह करा दीजिये।"

"किस के साथ ?" मैंने पूछा।

"जहाँ आप की इच्छा हो। परन्तु परमात्मा के लिए मुझे बम्बई में न रखिये—ये व्यक्ति मुझे फिर पकड़ लेंगे और मेरा जीवन पुनः संकट में फंस जाएगा।" उसने उत्तर दिया।

उस लड़की के उद्देश ने मानो मुझ में मानवता की भावना उत्पन्न कर दी थी। मैं सोचने लगा कि अब क्या करूं ?

:-*-:

: बारह :

नेकी के पथ पर

कस्तूरी की आपबीती ने जैसे मुझ में मानवता की भावना उत्पन्न कर दी थी। मैं सोचने लगा कि अब क्या करूं ? कस्तूरी का क्या करूं ? उसे उसके घर वापस पहुँचा दूं या उसे अपने साथ लाहौर ले जाऊं। बहुत सोचा, मस्तिष्क विकृत सा होने लगा। कस्तूरी को लाहौर ले जाना ठीक नहीं था, क्योंकि लाहौर का वातावरण उसके भविष्य के लिए लाभदायक नहीं था। दूसरी ओर उसे उसके घर वापस पहुँचाना भी सम्भव नहीं था क्योंकि कस्तूरी के माता पिता तो मर चुके थे और अन्य सम्बन्धियों के बुरे व्यवहार के कारण ही वह घर से भागने के लिए विवश हुई थी।

मैंने पूछा—"यदि तुम्हारे विवाह का प्रबन्ध कर दूं तो तुम्हें आपत्ति तो नहीं होगी ?"

कस्तूरी सहमत हो गई और मैंने यह निर्णय किया कि किसी योग्य लड़के को तलाश करके उससे कस्तूरी का विवाह कर दिया जाए।

यह सम्भवतः दूसरे दिन की बात है कि हम दोनों महालक्ष्मी के मन्दिर के दर्शनों के लिए गये थे। कस्तूरी ने पूजा को

तो इस श्रद्धा और भक्ति के भाव से कि मुझे बहुत आश्चर्य हुआ और इसके साथ ही अपने आप पर क्रोध भी आया। मैंने अनुभव किया कि मेरा सम्पूर्ण जीवन व्यर्थ गया। मानवी शरीर हज़ारों वर्ष की तपस्या के पश्चात प्राप्त होता है परन्तु मैंने अपने चारित्रिक पतन से उस का महत्व समाप्त कर दिया।

उस रात मैं बहुत रोया। कस्तूरी ने मुझे इस दशा में देखा तो बहुत व्याकुल हुई। उसने इसका कारण पूछा परन्तु मैं क्या बताता, उल्टा उसे भ्रम में डालना था। फिर भी जब उसने आग्रह किया तो मैंने बता दी अपने जीवन की आपबीती।

कस्तूरी चौंक पड़ी। मैंने कहा—"मैं तुम्हें भी खरीद कर लाया था अपना धन्धा चलाने के लिए, परन्तु तेरे भोलेपन ने मुझे बदल दिया है और मैं पहली बार अनुभव कर रहा हूँ कि मैंने अब तक दूषित जीवन बिताया है अब कसम खाता हूँ।

कस्तूरी भी रो पड़ी। कहने लगी—"बाबू जी! तुम देवता हो। तुम न होते तो मैं इस विपत्ति से क्योंकर छुटकारा प्राप्त करती। मेरे लिए तुम मनुष्य नहीं साक्षात भगवान् हो।"

बम्बई में रह न सका, सीधा जगन्नाथ जी चला गया। वहाँ प्रायश्चित किया। सप्ताह तक उपवास रख कर मेहतरों से अपने शरीर पर कोड़े लगवाए। इसके पश्चात फिर मथुरा गया, वृन्दावन की यात्रा की। कुछ दिन इसी प्रकार बीते और फिर कस्तूरी को लेकर अमृतसर पहुँच गया।

सन १९४७ के आरम्भ के दिन थे। अभी शान्त वातावरण था। हाँ कलकत्ता और अन्य शहरों से साम्प्रदायिक झगड़ों के समाचार अवश्य आ रहे थे। कस्तूरी मेरे साथ ही थी। विट्ठल के चंगल से मुक्त होने के पश्चात उसका स्वास्थ अच्छा हो रहा था और

वह बहुत प्रफुल्लित दीख पड़ती थी।

मेरी इच्छा थी कि कस्तूरी का विवाह धूमधाम से करूँ परन्तु यह इच्छा और आशा पूर्ण न हुई। कस्तूरी को टाईफाइड ने घेर लिया और वह पन्द्रह बीस दिन बीमार रहने के पश्चात हमेशा के लिए मुझ से अलग हो गई। मैं वह दृश्य भूल नहीं सकता, जब कस्तूरी ने मृत्यु शैय्या पर पड़े हुए मुझ से अन्तिम बातें की थीं।

उसने कहा था—"बाबूजी! तुम कुछ भी रहे हो परन्तु मेरे लिये तो पिता से भी बढ़कर हो। मैं मर जाऊंगी किन्तु तुम्हें नहीं भूलूंगी। जहाँ भी जाऊंगी तुम्हारे लिए प्रार्थना करूंगी। तुमने एक अबला की जान बचाई है, परमात्मा तुम्हारे सम्पूर्ण अपराध क्षमा कर देगा।"

क्या बताऊं कि किन भावनाओं को लेकर लाहौर पहुंचा था और मेरे मस्तिष्क की क्या दशा हुई।

कौशल्या के ओठों पर पूर्व की भाँति मुस्कुराहट खेल रही थी। तांगे वाली माई उसी प्रकार अपने धन्धे में लगी हुई थी और सावित्री भी पहले की भाँति अपने कामों में जुटी हुई थी। परन्तु मेरे लिये दुनिया बदल चुकी थी। मैं आत्मिक रूप से उस संसार में प्रविष्ट हो चुका था जिसमें मेरे लिये अपने अपराधों का प्रायश्चित करने के सिवा कोई चारा नहीं था।

कौशल्या ने पूछा—"आपको हो क्या गया है? आप उदास उदास क्यों रहते हो?"

मैं मौन रहा। उसने आग्रह किया तो मैंने कहा—"एक बात कहूँ, मान लोगी?"

उसने गम्भीरता से कहा—"यह आप कैसी बातें करते हैं।

आज तक आपकी कोई बात टाली है ? कोई भी बात अस्वीकार की है ?"

मैंने कहा—"यह ठीक है परन्तु इस बार सम्भवतः तुम टाल दो। सम्भव है तुम्हें यह बात पसन्द न आए ?"

वह मेरा मुँह ताकने लगी।

मैंने कहा—"इस धन्धे को छोड़ दो। यह अपराध है, पाप है।"

उसने चौंककर मुझे देखा और मौन रही।

मैंने कहा—"दूषित जीवन आत्मिक दृष्टिकोण से बुरा होने के अतिरिक्त भयानक भी है। यदि यह जीवन अच्छा होता तो हम पग पग पर गिरफ़्तारी के भय से चिन्तित न होते।"

कौशल्या इस बार बोली—"तो बम्बई से अब इस प्रकार पल्टा खाकर लौटे हो।"

मैंने कहा—"हां। मैं तो परिवर्तित हो चुका हूँ और प्रायश्चित करने का प्रयत्न कर रहा हूँ। जब तक मस्तिष्क और आत्मा को पूर्ण शान्ति प्राप्त नहीं होगी, प्रायश्चित करता ही रहूँगा। चाहे इस प्रायश्चित में मेरे प्राण ही क्यों न निकल जाएं।"

कौशल्या ने कहा—"यह तो ठीक है, परन्तु फिर इसी चक्कर में फंस गये तो ?"

"अब यह नहीं होगा ?" मैंने गम्भीरता से उत्तर दिया—"बहुत ठोकरें खा चुका हूँ अब अपने जीवन को संवारना चाहता हूँ। नेकी न सही लेकिन पाप तो नहीं करूंगा।"

कौशल्या की आँखों में आँसू आ गये। कहने लगी—"मैं भी इसे बुरा समझती हूँ परन्तु अब करूँ तो क्या करूँ। परिस्थितियों से विवश और वातावरण ने जीवन को जिस साँचे में ढाल

दिया है उसे बदलना भी तो आसान नहीं।"

मैंने उसका हाथ अपने हाथ में ले लिया आर कहा—

"परमात्मा की सौगन्ध खाकर कहता हूँ कि आज से तुम्हें अपनी बहिन समझता हूँ और तुम्हारी सुरक्षा के लिए बड़े से बड़ा बलिदान भी करूंगा।"

कौशल्या मौन थी।

मैंने कहा—"मेरे पास जो कुछ है तुम्हारे लिये है। तुम्हें जीवन भर किसी प्रकार का कष्ट नहीं होगा।"

कौशल्या ने हाथ छुड़ा लिया और फूट फूट कर रोने लगी। बड़ी कठिनता से अपने आँसुओं को रोकते हुए उसने कहा—"तुम मनुष्य नहीं देवता हो।"

एक बार फिर अपने लिए 'देवता' शब्द सुनकर मुझे बहुत लज्जा अनुभव हुई। मैंने कहा—"कौशल्या मेरा तो जी चाहता है कि मैं अपने आप को पुलिस के हवाले कर दूं। अपने अपराधों को स्वीकार कर लूं ताकि दंड मिले और मेरे अपराधों का प्रायश्चित हो जाए"

कौशल्या काँप उठी। उसने कहा—"यह आप क्या कर रहे हैं, अपनी जान गँवाना चाहते हैं क्या?"

मेरी आँखों में आँसू आ गये। मैंने कहा—"जीवन अब किसी काम का नहीं रहा। जिसके कारण दर्जनों जानें नष्ट हो गई हों, अब उसे जीवित रहने का अधिकार ही क्या है?"

कौशल्या सहमी हुई थी और निरन्तर रो रही थी।

उसने कहा—"जिसे बहिन कहकर वचन निभाने की प्रतिज्ञा की है उसे भी जेल में पहुँचा दोगे क्या?"

मैंने आश्चर्य से उसकी ओर देखा।

वह कहने लगी—"मैं भी तो तुम्हारी साझीदार हूँ। वह कौनसा ऐसा अपराध है जिसमें मैंने तुम्हारे साथ भाग नहीं लिया। यदि तुम गिरफ़्तार हो गये तो क्या मैं बच जाऊंगी ?"

कौशल्या का यह तर्क ठीक था। मैं गिरफ़्तार हो जाऊं तो कौशल्या हज़ार प्रयत्न करने पर भी नहीं बच सकती। और फिर न जाने इसका क्या अन्त होगा, कौन कौन पकड़ा जायगा, किस किस का अपमान होगा।

मैं निराश हृदय से घर में आया और फूट फूट कर रोने लगा।

एक कठिन प्रश्न था जो मेरे मस्तिष्क को विकल कर रहा था। सोच रहा था कि अपने आपको गिरफ़्तारी के लिये सौंप दूं या आत्मघात कर लूं। आदि से अन्त तक युक्ति भयानक थी। अपने लिये नहीं बल्कि कौशल्या के लिये, सावित्री के लिये और कई दूसरे व्यक्तियों के लिये। परन्तु रास्ता आसान था। खामोशी से जीवन समाप्त हो जाएगा और किसी को मालूम भी नहीं होगा।

मैं रात के अन्धेरे में अपने घर से बाहर निकला। किवाड़ खड़खड़ा उठे। भय हुआ कि कौशल्या को ज्ञात न हो जाए। रुका और फिर आगे बढ़ा। विश्वासतः किसी को इसका ज्ञान नहीं हुआ था।

फाटक से बाहर पाँव रखा तो एक चीख सुनाई दी। कोई मनुष्य तेज़ी से भाग रहा था। आगे बढ़ा तो ठोकर लगी। गिरने ही वाला था कि देखा एक व्यक्ति ज़मीन पर पड़ा हुआ था।

वह चिल्ला रहा था—"मार दिया। दौड़ो, पकड़ो, बचाओ।"

समझ गया। लाहौर का वातावरण दूषित हो ही रहा था

किसी ने साम्प्रदायिकता के जनून में एक दूसरे पर आक्रमण कर दिया है। आक्रमणकारी तो भाग गया था परन्तु ज़ख्मी व्यक्ति पृथ्वी पर लोट रहा था।

मैंने कौशल्या को आवाज़ दी। वह भी बाहर आ गई। उस मृतयुवक को उठाया और अपने कमरे में ले गया। ध्यान से देखा। उसे बहुत गहरा ज़ख्म आया था।

ज़ख्मी एक ईसाई युवक था। मालूम नहीं उसे छुरा घोंपने वाला हिन्दू था या मुसलमान। हाँ इतना अवश्य था कि ज़ख्मी मनुष्य भोला-भाला था और भ्रम के कारण ज़ख्मी हुआ था।

सुबह सवेरे उसे हस्पताल में दाखिल करा दिया। उस का कोई वारिश न था, कोई सम्बन्धी नहीं था। मैंने अपने आपको उसका भाई बताया और इस प्रकार से उसकी सेवा सुश्रुसा मेरे कर्तव्य का अंग बन गई।

उसका नाम था मिस्टर स्टोक्स। किसी छापेखाने में काम करता था और ईसाई होने के कारण उसने यह समझा था कि रात को लौटकर आते समय उस पर कोई आक्रमण नहीं करेगा। परन्तु उसका भाग्य किसी भ्रम का शिकार हुआ और अचानक उस पर आक्रमण हो गया।

हस्पताल में लोहे के इस्प्रिंगदार बिस्तर पर बैठे हुए उसने कहा—"आप मेरे लिए दया के अवतार बनकर आये हैं। यदि आप न होते तो मैं मर चुका होता।"

मेरी आँखों में आँसू आ गये। मैं मौन रहा। मैंने सोचा कि उसे क्या मालूम कि इस घटना ने मुझे आत्मघात से रोका है।

स्टोक्स की सेवा सुश्रुसा में संलग्न रहते हुए भी मुझे कौशल्या

की रह-रह कर याद आती थी। मैं समय-समय पर उसका समाचार मंगवाता रहता था।

साम्प्रदायिक झगड़ों की आग फैलती ही जा रही थी—इक्के दुक्के आक्रमण के पश्चात् बड़े पैमाने पर आक्रमण होने लगे। मानवी जिन्नोंने गलियों और मुहल्लों को अग्नि की भेंट करना आरम्भ कर दिया। रात के समय दूर दूर से आग की लपटें आकाश की ओर बढ़ती हुई दृष्टिगोचर होतीं थीं। 'अल्ला हू अकबर' और 'हिन्दू धर्म की जय' के नारों के बीच जीवन और मृत्यु के द्वन्द्व में ग्रसित पुरुष और स्त्री तथा बच्चों की चीखें वज्रहृदय मनुष्य के भी रुला देती थीं। रास्ते बन्द हो रहे थे। एक ओर लाहौर के निवासी घरबार छोड़कर भाग रहे थे तो दूसरी ओर लुटे पिटे शरणार्थियों के समूह दम तोड़ते हुए आ रहे थे। लाहौर नर्क बन चुका था और रेडियो से घोषणा की जा रही थी कि पाकिस्तान स्थापित हो गया है।

एक ओर लाशों की सड़ान्ध और दूसरी ओर खुशी की शहनाइयाँ—मनुष्य मनुष्य के विनाश पर प्रसन्न हो रहा था।

स्टोक्स स्वस्थ हो चुका था। वह जानता था कि मेरी सलामती भी खतरे में है इसलिए वह मुझे अपने घर ले गया।

शाम को मैंने कौशल्या के सम्बन्ध में पूछा। स्टोक्स ने अपना आदमी भेजा था। उसने जो कुछ बताया उससे मुझ पर जैसे बिजली सी गिर पड़ी। मैंने कौशल्या को बहिन बनाकर उसकी सुरक्षा की सौगन्ध खाई थी परन्तु इससे पहिले ही वह मुझ से छीन ली गई थी।

स्टोक्स मेरी दशा देखकर बहुत विकल हुआ। उसने कहा—"नानक भाई! तुम्हें वास्तव में बहुत बड़ा आघात हुआ

है परन्तु मालिक की इच्छा को कौन टाल सकता है ?"

एक सार्वभौमिक विनाश था। कौशल्या भी उसकी भेंट हो गई। अब सब्र के सिवा और चारा भी क्या था।

मैं अपनी भावनाओं पर काबू न पा सका। मेरी आँखों से आँसुओं की धारा बहने लगीं।

मैंने कहा—"यदि ईश्वर की यही इच्छा थी तो सम्भवतः कौशल्या के अपराधों का प्रायश्चित इसी प्रकार होना था। परन्तु मैं अब बेचैनी की आग में जलकर जीवित नहीं रहना चाहता। मैं भी वहीं जाऊंगा जहाँ कौशल्या गई है।

स्टोक्स ने रोका—आत्मिक रूप में बहुत द्वन्द्व हुआ। बहुत विकलता हुई। मैंने अपनी सन्तुष्टि के लिए कई व्यक्तियों से पूछा। किसी ने कहा—कौशल्या अपने शहर गुजरात चली गई है। किसी ने कहा वह अमृतसर जा रही थी कि लाहौर के रेल स्टेशन पर उड़ा ली गई। कई एक से सुना कि वह फाटक में ही कतल कर दी गई थी।

कुछ समझ न सका कि कौशल्या कहाँ गई और उसका क्या बना ? अभी तक उसके विषय में निश्चित रूप से कुछ भी ज्ञात नहीं हुआ।

स्टोक्स ने कहा—"अच्छा यही है कि तुम हिन्दोस्तान न जाओ और यहीं कौशल्या की तलाश करो। सम्भव है जीवन यात्रा में कहीं मिलन हो जाए।"

मैंने सोचा—ठीक ही तो है। ईश्वर की रचना में सम्भवतः परिवर्तन हो जाए। सम्भव है जीवन की यह लम्बी यात्रा किसी समय प्रसन्नता से भर जाए।

आज में नानकचन्द नहीं, न हीं स्टोक्स का भाई बैंजमिन

नानकचन्द। मेरा नाम है अबीद उल्ला। और तीन वर्ष से सरहद के उसपार अवारागर्दी कर रहा हूँ। लाहौर से गुजरात, गुजराँवाला से गुजरात; गुजरात से जहलुम और रावलपिंडी। कितनी ही गलियों के चक्कर काटे, कितने ही देहातों की खाक छानी है। मैं ढूँड रहा हूँ उसे, जिसकी तस्वीर मेरी आंखों के सामने घूम रही है। जिसका नाम मेरे मस्तिष्क में गूंज रहा है। आज मैं बुर्दाफ़रोश नहीं, आज मुझ से किसी को भय नहीं। आज भय है तो स्वयं मुझे अपने आप से। सोचता हूँ शायद पागल न बन जाऊँ। सम्भवतः यही मेरे अपराधों की सज़ा है। सम्भवतः यही मेरे पाप कर्मों का प्रायश्चित है।

—:*:—

शाही ग्रन्थमाला का सर्वप्रिय उपन्यास

शाही लकड़हारा

प्रारब्ध की विचित्र गति देखनी हो, तो इस पुस्तक को पढ़िये। राजा का पुत्र काल की गति से किस प्रकार लकड़हारे का काम करता हुआ सैंकड़ों प्रकार के कष्ट सहता है और कैसे फिर राजसिंहासन पर बैठता है। ऐसी मनोरंजक और करुणा रस से भरी हुई इसके जोड़ की दूसरी पुस्तक आज तक प्रकाशित नहीं हुई। निर्धनता से पीड़ित गृहस्थियों को यह हितैषी मित्र के समान धीर बंधाती है। प्रारब्ध के जटिल प्रश्न की समस्या सम्मुख रखने में तो यह पुस्तक एक शास्त्र कही जा सकती है। पुस्तक स्त्रियों और पुरुषों दोनों के लिए शिक्षाप्रद और पढ़ने योग्य है। इस पुस्तक के कई संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। यदि आपने इस उपन्यास को अब तक न पढ़ा हो तो अब अवश्य पढ़ें। सजिल्द पुस्तक का मूल्य केवल ३॥) रुपये।

कवि रवीन्द्र नाथ ठाकुर की सुन्दर कहानियों का संग्रह

चाँद सितारे

इस पुस्तक में रवीन्द्र बाबू की चुनी हुई कहानियों का संग्रह किया गया है। इन कहानियों में आप मानव हृदय की प्रत्येक मनोवृत्ति का सूक्ष्म निरीक्षण पा सकेंगे और पढ़कर मुग्ध हो जाएंगे। ठाकुर की कहानियों के विषय में अधिक कुछ कहना व्यर्थ है। पुस्तक का मूल्य सजिल्द केवल – २॥)

नारायणदत्त सहगल एण्ड संज़,

चौक फतहपुरी, देहली

महिलाओं की लेखनी द्वारा लिखित
निराला तथा अनुपम कहानी संग्रह

आँचल और आँसू

इस पुस्तक के पढ़ने पर आप को मालूम होगा कि कोई महिला जब हाथ में कलम उठाती है तो काग़ज़ के पृष्ठों पर मानव जीवन सम्बन्धी ऐसे सुन्दर और अनुपम चित्रों का चित्रण करती है कि बड़े-बड़े लेखक मुंह ताकते रह जाते हैं। इस पुस्तक में अखंड भारत की प्रसिद्ध लेखिकाओं—सीता चटर्जी, अस्मत चुगताई, मालती देवी, हिजाब इम्तियाज़अली, कान्ती देवी और डा० रशीदजहाँ आदि की मनोरंजक और शिक्षाप्रद कहानियाँ संग्रहित की गई हैं।

एक प्रसिद्ध बंगला उपन्यास का अनुवाद

समाज का अत्याचार

इस उपन्यास में आप पढ़ेंगे, पवित्र प्रेम और विचित्र त्याग की कहानी। समाज की कुरीतियां और उन कुरीतियों को छुपाने के विचार से किये गये अत्याचार। समाज का शिकार बनी हुई एक विवाहिता युवती की करुण कथा।

इस पुस्तक में हैं– एक पीड़ित अबला के पीड़ित हृदय की आहें, दिल की धड़कनें और अश्रु।

मूल्य सजिल्द पुस्तक २॥)

नारायणदत्त सहगल एण्ड संज़

चौक फ़तहपुरी, देहली

सहगल प्रकाशन में–

जासूसी उपन्यासों का सिलसिला

आपको यह जानकर प्रसन्नता होगी कि हमने अन्य मनोरंजक पुस्तकों के प्रकाशन के अतिरिक्त योरुप के मान्य तथा प्रतिष्ठित लेखकों के चुने हुए प्रसिद्ध रहस्यमय रोमांचकारी उपन्यासों को हिन्दी भाषा में प्रकाशित करने का निश्चय किया है। आशा है कि प्रतिमास एक उपन्यास साहित्य प्रेमियों को भेंट किया जाया करेगा। निम्नलिखित उपन्यास प्रेस में जा चुके हैं।

विजय किसकी (प्रकाशित हो चुका है) मूल्य ४)

पीला हीरा

पुजारिन

हत्यारी दुल्हन

अनोखा जासूस

नोट:—आप १) रुपया भेजकर इस सिलसिले के स्थाई ग्राहक बन सकते हैं। स्थाई ग्राहकों को २५% प्रतिशत कमीशन दिया जाता है। नई पुस्तक छपने पर स्थाई ग्राहकों को सूचित कर दिया जाएगा। पुस्तक आर्डर आने पर ही भेजी जा सकेगी। डाक ख़र्च हर हालत में ग्राहक को ही देना पड़ेगा।

नारायणदत्त सहगल एण्ड संज़

चौक फ़तहपुरी, देहली